अभिनव कृषि

वर्ष-3 अंक-2 जून-2021

विशेषांक

● खरीफ फसल उत्पादन तकनीक ● समन्वित कीट व रोग प्रबन्धन ● खरपतवार प्रबन्धन ● मृदा एवं जल संरक्षण

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

#IFFCONanoUrea

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

इफको नैनो यूरिया तरल

पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!

लागत कम करने में सहायक

किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि

मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए

फसल उपज को बढ़ाए

पौधों के पोषण में सहयोगी

पारंपरिक यूरिया से सस्ता

FOLLOW US:

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

ललित पाटीदार
(M.Sc. Horticulture)

मो. 9413023482, 9887437524

अम्बिका मॉर्डन एग्रीकल्चर

KRISHAK
SUMITOMO CHEMICAL
Ranadey
DUPONT
BAYER
BASF
We create chemistry

नर्सरी टूल्स, मल्च, स्प्रे पम्प, खाद, बीज, कीटनाशक, वर्मी कम्पोस्ट, ऑर्गेनिक खाद एवं दवाई के लिए सम्पर्क करें।

चन्द्रभागा रोड़, झालरापाटन, जिला-झालावाड़ (राज.) 326023

KPU 12-1735

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

किसान कॉल सेन्टर हेल्पलाईन नं. 0744–2662700

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा-324007 (राज.) द्वारा मुद्रित तथा
निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001 से प्रकाशित। प्रधान संपादक डॉ. एस.के. जैन ।

अभिनव कृषि

वर्ष–3 अंक–2 जून–2021 पृष्ठ संख्या : 49

संरक्षक

प्रोफेसर डी.सी. जोशी
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सहा. आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ.राकेश कुमार बैरवा
सहा. आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड.ई.

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट–"अभिनव कृषि" में प्रकाशित आलेख में दी गई जानकारी स्वयं लेखकों की है। किसी भी प्रकार के विवाद के लिए प्रकाशक एवं सम्पादक मण्डल जिम्मेदार नहीं होगा। तथा इसमें प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है।

अभिनव कृषि

वर्ष–3 अंक–2 जून–2021

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सोयाबीन की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताऐ भरत लाल मीना, चतुर्भुज मीना, धर्म सिंह मीना एवं बी के पाटीदार	1-3
2.	खरीफ में मूंग व उडद की उन्नत खेती से अधिक लाभ कमाये कपिल कुमार नागर, एस.एन.मीना एवं के.सी. मीना	4-5
3.	हाडौती मे मूंगफली उत्पादन की संभावना और उन्नत खेती शंकर लाल यादव, रामप्रताप यादव, संतोष देवी सामोता, गणेश नारायण यादव, रामावतार यादव, राजेन्द्र कुमार यादव, डी एल यादव एवं खजान सिंह	6-8
4.	मृदा एवं जल परीक्षण : महत्व एवं तकनीकी उदिति धाकड़, राजेन्द्र यादव, बलदेव राम, चमन जादौन एवं हरफूल मीणा	9-11
5.	राजस्थान में बाजरे की लाभप्रद खेती शिशराम जाखड़ एवं रामदेव सुतालिया	12-13
6.	सोयाबीन में खरपतवार प्रबन्धन कर अधिक उपज लें धर्मसिंह मीना, भरत लाल मीना, चतुर्भुज मीना, बी.के. पाटीदार एवं सुशीला कलवानियाँ	14-16
7.	फसलों में जल का महत्तव, जल उपयोग दक्षता एवं जल उत्पादकता बढ़ाने के उपाय बलदेव राम, अर्जून सिंह जाट, राकेश कुमार बैरवा, जगदीश प्रसाद तेतरवाल, राम स्वरूप नारोलिया, हरफूल मीना, इन्द्र नारायण माथुर, प्रताप सिंह एवं राजेन्द्र कुमार यादव	17-20
8.	मक्का की फसल के रोग एवं उनका समन्वित प्रबन्धन आर. एन. शर्मा, राहुल कुमार एवं वी.एस. मीना	21-22
9.	कम लागत वाले जैव उर्वरकों का बीजोपचार कर फसलोत्पादन के साथ आमदनी बढाये अर्जुन सिंह जाट एवं बलदेव राम	23-25
10.	दलहनी फसलें : भूमि उर्वरता बढ़ाने व टिकाऊ खेती का आधार नूपुर शर्मा, बी. एल. मीना एवं के. सी. मीना	26
11.	आम के फलों के विपणन और प्रसंस्करण के माध्यम से लाभ में वृद्धि जितेन्द्र सिंह शिवरान, राकेश कुमार जाट एवं मोहन लाल जाट	27-28
12.	सब्जियों की बीजोत्पादन तकनीक राजेश चौधरी, अशोक चौधरी, मनीषा धायल एंव सुरेश कुमार जाट	29-31
13.	गेलार्डिया की व्यावसायिक खेती अशोक चौधरी, आशुतोष मिश्रा, राजेश चौधरी, मनीषा धायल एवं सुरेश कुमार जाट	32
14.	पान का महत्व एवं इसकी वैज्ञानिक खेती खजान सिंह, उदयभान सिंह, वर्षा गुप्ता, शंकर लाल यादव एंव मंजू मीना	33-34
15.	खीरा की उन्नत खेती सरिता, सोमदत्त एवं राकेश कुमार बैरवा	35
16.	बदलते कृषि परिवेश में जैविक प्रमाणिकरण की अनिवार्यता कुमुद शुक्ला, मनमीत कौर, सूर्या राठौड़, एवं दीक्षा शर्मा	36-38
17.	नागफनी : शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में हरे चारे का उत्तम विकल्प मोहन लाल जाट, बच्चू सिंह मीना, सुरेश कुमार बैरवा एवं भाग चन्द धायल	39-40
18.	सामाजिक संचार – कृषि विकास का नवीनतम तंत्र कैलाश, समर पाल सिंह एवं पी. के. गुप्ता	41-43
19.	फसल उत्पादन में नैनो यूरिया का महत्व एवं उपयोग प्रतिभा सिंह	44-45
20.	सोयाबीन बुवाई के पहले बीज संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारी भरत लाल मीना, चतुर्भुज मीना, धर्म सिंह मीना एवं बी के पाटीदार	46-47
21.	मछली व सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली महेन्द्र कुमार यादव, नरेश राज कीर एवं नीतेश कुमार यादव	48
22.	खरीफ में गाजरघास के प्रसार का करें समुचित नियंत्रण पप्पू खटीक, सुभाष असवाल, सुनिल कुमार, डी. के. सिंह, टी. सी. वर्मा एवं के.सी. मीना	49

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

अभी हाल ही में कोरोना की दूसरी लहर की विभिषिका को हमने झेला है, बहुत से लोगों ने अपनो को इस वैश्विक महामारी में खोया है, मैं उनके परिवारजन को अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस महामारी से बचाव हेतु सरकार द्वारा चलाया जा रहे टीकाकरण अभियान में टीका अवश्य लगवाये और इसके लिए दूसरो को भी प्रेरित करें।

जैसा कि कोरोना महामारी के दौर में हमारी अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा हैं, आशा करता हूँ आगामी खरीफ फसलों की अच्छी पैदावार रहेगी और किसानों एवं युवा कृषि उद्यमियों की आर्थिकी में निश्चय ही सुधार होगा। इस वैश्विक महामारी में भी हमारे कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा वर्चुअल कृषि प्रचार–प्रसार एवं प्रशिक्षणों का आयोजन किया जा रहा है, ताकि किसान भाईयों को किसी भी प्रकार की तकनीकी जानकारी से वंचित न रहना पड़े।

देश ने खाद्यान्न सुरक्षा में आशातीत प्रगति प्राप्त कर ली है तथा पिछले वर्ष हमारे देश में 300 मिलियन मैट्रिक टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ। किन्तु हमारे देश में 19 करोड़ जनसंख्या कुपोषण से ग्रसित है। अतः यह आवश्यक है कि किसान भाई खेती के साथ–साथ अपने खेत पर पोषण वाटिका भी विकसित करें जिसमें मौसमी सब्जियां एवं फल लगाकर अपने परिवार के पोषण का ध्यान रखें।

प्रस्तुत अंक में विभिन्न विषय विशेषज्ञों से प्राप्त समसामायिक एवं कृषि तकनीकी विषयों को सम्मिलित किया गया है। जिनके माध्यम से खरीफ फसलों की उन्नत तकनीकीयाँ, मृदा एवं जल परीक्षण, फसलों में जल उपयोग दक्षता, जैव उर्वरकों का प्रयोग, सब्जी बीजोत्पादन, आमफल प्रसंस्करण, गैलार्डिया की खेती, जैविक प्रमाणीकरण, खरीफ में गाजरघास का नियंत्रण एवं मछली एवं सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली आदि विषयों पर वैज्ञानिक जानकारी देने का प्रसास किया गया है आशा करता हूं आप सभी इससे लाभान्वित होगें।

मैं पत्रिका के सभी लेखकों, सम्पादक एवं सलाहकार मण्डल के सदस्यों को इस अंक के प्रकाशन की हार्दिक बधाई तथा सभी कृषक भाईयों की खरीफ फसलों से अच्छी पैदावार प्राप्त करने हेतु शुभकामनाऐ देता हूं।

(एस.के. जैन)

सोयाबीन की उन्नत प्रजातियाँ एवं उनकी विशेषताऐ

भरत लाल मीना, चतुर्भुज मीना, धर्म सिंह मीना एवं बी के पाटीदार
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज फार्म, कोटा (राज0)

किसी भी फसल की अधिकाधिक उत्पादन लेने में उन्नत किस्मों तथा उनके गुणवत्तापूर्ण बीज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विकसित उन्नत किस्मों को विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में कम से कम तीन वर्षो के निरन्तर परीक्षण एवं आंकलन में लाभकारी पाये जाने पर ही उन्हे राज्य / क्षेत्र अनुसार विमोचित किया जाता है। इन किस्मों में अधिक उत्पादन क्षमता एवं विशेष गुण होते है जिनसे वह विभिन्न जैविक एवं अजैविक करको का विपरीत परिस्थितियो में भी सामना करने में सक्षम होती है आजकल निम्नलिखित किस्में किसानों द्वारा प्रयोग में लायी जा रही है।

तालिका : 1 उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं

क्र.सं.	किस्मों का नाम	पकने की अवधि	उपज (क्विं./हे.)
1.	पी.के. 472	110–115 दिन	25–30
2.	जे.एस. 335	100–105 दिन	25–30
3.	मैक्स–450	100–105 दिन	25–30
4.	एन.आर.सी. 37 (अहिल्या–4)	100–105 दिन	25–30
5.	प्रताप सोया.1	90–95 दिन	25–30
6.	जे.एस.93–05	90–95 दिन	25–30
7.	जे.एस. 97–52	98–102 दिन	25–30
8.	जे.एस.95–60	80–85 दिन	18–20
9.	प्रताप सोया. 2	90–95 दिन	25–30
10.	आर के एस. 24	98–100 दिन	25–30
11.	आर के एस. 45	90–95 दिन	25–30
12.	जे.एस. 20–34	90 दिन	20–25
13.	जे.एस.20–29	95 दिन	20–25
14.	आर के एस.113	98–102 दिन	22–25
15.	एन.आर.सी. 127	97–101 दिन	20–23

सोयाबीन की उन्नत किस्में

(1) पी.के. 472 : मोटे, पीले दानों वाली मध्यम ऊँचाई की इस किस्म का पौधा सीधा होता है। पत्तियां चौड़ी, गहरे हरे रंग की होती है। इसके फूल का रंग सफेद होता है तथा तना पत्तियां एवं फलियों पर स्लेटी रंग के रोये होते है। फलियां गुच्छों में लगती है। यह पकने में 110–115 दिन का समय लेती है और पैदावार 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसके 100 दानों का भार 13–15 ग्राम होता है। हायलम का रंग हल्का भूरा होता है। यह किस्म पीला मोजेक, पर्ण धब्बा एवं बेक्टीरियल बीमारियों से प्रतिरोधी होने के साथ–साथ कई प्रकार के कीड़ो से भी प्रतिरोधी होती है। इसमें फलियां चटकने की समस्या नहीं है।

(2) जे.एस. 335 : पीले दाने वाली तथा 100–105 दिन में पकने वाली इस किस्म में फूल बैंगनी रंग और फलियां चिकनी होती है तथा चटकती नहीं हैं। दाना पीला, मध्यम आकार का तथा काली नाभिका (हायलम) वाला होता है। अच्छी अंकुरण क्षमता वाली इस किस्म की पैदावार 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणु पत्ती धब्बा एवं अंगमारी रोगों के लिये प्रतिरोधी तथा मोजेक एवं तना मक्खी के लिये सहनशील है।

(3) मैक्स 450 : छोटे एवं पीले दानों वाली तथा मध्यम ऊँचाई की यह किस्म लगभग 105 दिन में पककर तैयार हो जाती है। बैंगनी पुष्प, अर्ध–सीमित वृद्धि भूरे रोये, काली नाभिका वाली इस किस्म के 100 दानों का भार 8–10 ग्राम तथा उपज 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणु पत्ती धब्बा तथा अन्य पत्ती रोगों से

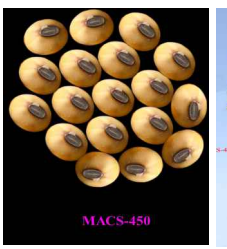

प्रतिरोधक तथा पत्ती खाने वाले कीड़ों से सहनशील होती है।

(4) एन.आर.सी. 37 (अहिल्या–4) : चौड़ी, गहरी हरी पत्तियों वाली इस किस्म के पौधे सीधे रहते है। 100–105 दिन में पकने वाली इस किस्म के फूल सफेद, उत्तम अंकुरण, दाना मध्यम मोटा तथा नाभिका गहरी भूरी होती है। इसके 100 दानों का भार 10–13 ग्राम एवं पैदावार 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म भी जीवाणु पत्ती धब्बा एवं तना गलन रोग से मध्य प्रतिरोधी, तना मक्खी एवं पर्ण भक्षी कीटों से सहनशील होती है।

(5) प्रताप सोया–1 (आर.ए.यू.एस. 5) : गहरे बैंगनी फूलों एवं पीले दानों वाली इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई तथा सीधे होते है। 95 दिन में पकने वाली इस किस्म की पत्तियां गहरी हरी तथा भूरे रोये वाली होती है। 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पैदावार देने वाली इस किस्म के 100 दानों का भार 10–12 ग्राम होता है। यह किस्म गर्डल बीटल नामक कीड़े से अत्यधिक प्रतिरोधी है। पर्ण भक्षी कीटों, पर्ण धब्बा एवं तना सड़न रोग से मध्यम प्रतिरोधी है तथा इस किस्म में तेल की मात्रा भी अधिक होती है।

(6) जे.एस. 93–05 : संकरी पत्तियों एवं बैंगनी फूलों वाली यह किस्म 90 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म में अंकुरण क्षमता उत्तम, दाना मध्यम मोटा तथा 100 दानों का भार 9–10 ग्राम होता है। यह किस्म कई प्रकार के रोगों एवं कीड़ों से मध्यम प्रतिरोधी है तथा 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

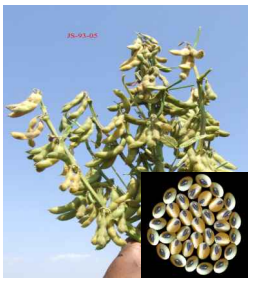

(7) जे.एस. 97–52 : यह मध्यम अवधि एवं मध्यम दाने वाली प्रजाति है। इसमें बहुरोधी क्षमताऐं है। यह प्रमुख रोगों जैसे पीला मोजेक, जड़ सड़न, प्रमुख कीटों जैसे तना छेदक एवं पत्ती भक्षक कीटों एवं अधिक नमी के लिये प्रतिरोधी/ सहनशील है। यह प्रजाति अपने विशिष्ट आकारीय लक्षणों जैसे सफेद फूल, हल्के रंग की फलियां, तने एवं पत्तियों पर रोंये एवं गहरी काली नाभिका (हाइलम) के साथ समरूपता एवं नवीनता रखती है। इस किस्म के बीजों में अधिक अंकुरण एवं लम्बे समय तक भण्डारण के बाद भी वांछनीय अंकुरण की विशेष क्षमता है। बीज दर 60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर, लाईन से लाईन की दूरी 45 से.मी. रखें। अच्छे पोषक स्तर वाली भारी मिट्टी एवं कुशल जल प्रबन्धन में उत्पादन क्षमता 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है तथा 98–102 दिन में तैयार हो जाती है।

(8) जे.एस. 95–60 : यह किस्म जे. एस. 93–05 से भी 8–10 दिन पूर्व पककर तैयार हो जती है। दाने का आकार अण्डाकार, बोल्ड, नाभिका हल्की भूरी, दाना चमकदार पीला होता है तथा अंकुरण क्षमता 85–90 प्रतिशत होती है। फूलों का रंग नीला होता है। तना, पत्तियाँ व फली चिकनी होती है। पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती है तथा यह 85–88 दिन में पक जाती है। बीज दर 80 किलो प्रति हैक्टेयर एवं लाइन से लाइन की दूरी 30 से. मी. पर औसत उत्पादन 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है। यह किस्म जड़ सड़न व पर्णीय बीमारियों, पत्ती चूसक कीटों, पत्तियां काटने वाले कीटों के लिये प्रतिरोधी या सहनशील क्षमता होती है

(9) प्रताप सोया–2 : यह किस्म उचित परिस्थितियों में 90–95 दिन में पककर 25–30 क्विंटल/हैक्टेयर की उपज देती है। इसमें तेल की मात्रा 18–20 प्रतिशत पायी जाती है। यह किस्म तम्बाकू इल्ली, गर्डल बीटल तथा अन्य पत्तियां खाने वाली कीटों से मध्यम प्रतिरोधी, पत्ती धब्बा रोग तथा अन्य बीमारियों से भी मध्यम प्रतिरोधी पायी गई है।

(10) प्रताप राज–24 (आर.के.एस. 24) : मध्यम ऊँचाई की यह किस्म 95–100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। फूल सफेद, पत्तियां गहरी हरी रंग की चौड़ी, तना मजबूत तथा पत्तियों, तने और फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। बीज हल्के पीले रंग के भूरी नाभिका वाले होते है। उचित परिस्थितियों में इसकी पैदावार 25–30 क्वि0/है0 होती है। इस किस्म में तेल की मात्रा 21.5 प्रतिशत होती है। यह किस्म गर्डल, बीटल, सेमी लूपर तथा तम्बाकू इल्ली से मध्यम प्रतिरोधी पायी गई है तथा पीत विषाणु रोग, चार कोल रोट (तना गलन) तथा पत्ती धब्बा रोगों से भी मध्य (तिरोधी पायी गई है।

(11) प्रताप राज–45 (आर.के.एस. 45) : इस किस्म की औसत उपज 25–30 क्विं./है. होती है तथा पकाव अवधि 90–95 दिन होती है इसमें तेल की मात्रा 21 प्रतिशत होती है । फूल सफेद, पत्तियां चौड़ी व गहरी हरी, तना मजबूत होता है तथा पत्तियों, तने

और फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। बीज हल्के पीले एवं भूरी नाभिका वाले होते है। यह गर्डल बीटल, सेमीलूपर तथा तम्बाकू इल्ली से मध्यम प्रतिरोधी तथा पीत विषाणु रोग, चारकोल रोट (तना गलन) तथा पत्ती धब्बा रोगों से मध्यम प्रतिरोधी होती है।

(12) कोटा सोया–1 (आर.के.एस.–113) : यह मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल बैंगनी, पत्तियां हल्के हरे रंग की व पत्तियां, तने व फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। बीज मध्यम आकार, पीले रंग एवं भूरी नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 98–102 दिन में पककर 22–25 क्विंटल/हैक्टर की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा औसतन 18.63 प्रतिशत होती है। यह किस्म पीतशीरा मोजेक रोग से प्रतिरोधी तथा पत्ती भक्षक, तना मक्खी, चेंपा एवं पर्णसुरंगक कीटों से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

(13) जे.एस. 20–34: यह मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल सफेद, पत्तियां गहरे हरे रंग की व तने व फलियां रोये रहित है। बीज मध्यम आकार के, पीले रंग के काली नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 90 दिन में पककर 20–25 क्विंटल/हैक्टर तक की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा 20–22 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती खाने वाले कीटों, तना मक्खी, चारकोल रॉट, पत्ती धब्बा रोग, जीवाणु रोग से सहनशील हैं।

(14) जे.एस. 20–29 : यह भी मध्यम ऊँचाई वाली किस्म है जिसके फूल सफेद, पत्तियां हरे रंग की व फलियों पर भूरे–पीले रंग के रोये पाये जाते है। बीज बड़े आकार के, पीले रंग के काली नाभिका वाले होते है। यह किस्म लगभग 95 दिन में पककर 20–25 क्विंटल/हैक्टर तक की पैदावार देती हैं। इस किस्म में तेल की मात्रा 20–22 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती खाने वाले कीटों, तना मक्खी, गर्डल बीटल, जीवाणु रोग, चारकोल रॉट, पत्ती धब्बा , झुलसा एवं विषाणु रोग से सहनशील हैं।

(15) एन.आर.सी. 127 : यह मध्यम ऊँचाई की एवं पीले दाने वाली किस्म है जिसकी पत्तिया हल्के हरे रंग की एवं तने व फलियों पर हल्के रंग के रोये पाये जाते है इस किस्म मे फूलों का रंग सफेद एवं बीज मध्यम आकार के पीले रंग के एवं जिसमे नाभिका (hilum) काले रंग की होती है। यह किस्म लगभग 97–101 दिन पककर लगभग 20–23 क्वि.प्रति हेक्टर की पेंदावर देती है इसमे तेल की मात्र 18–19 प्रतिशत होती है यह किस्म पीत शिरा मोजेक रोग के प्रति प्रतिरोधी पायी गयी है। यह किस्म सोया फोर्टिफाइड़ व्हीट फ्लोर के लिय उपयुक्त है क्योकि इसमे (Anti Nutritional factor) के टी आई नहीं पाया जाता है। इस तरह की हमारे देश मे यह पहली किस्म है।

किसान अपने खेत पर स्वय का सोयाबीन बीज उत्पादन केसे करे ?

यह सुनिश्चित करे कि जिस किस्म का बीज उत्पादन किया जा रहा है वह उसी खेत मे पिछले वर्ष मे न उगाई गई हो एवं खेत मे जल निकास का उचित प्रबन्ध हो । बुवाई से पहले खेत की गहरी जुताई एवं विपरीत दिशा मे बख्खर एवं पाटा चलाकर खेत को समतल करे। मानसून के आने के पश्चात 45 से. मी. कतार से कतार की दूरी एवं 5 से. मी. बीज की दूरी रखते हुए अधिकतम 3 से. मी. की गहराई पर 60–80 कि. ग्रा. /हेक्टर कि दर से उपयुक्त सीड ड्रिल (बीबीएफ या रीज फेरो) से बुआई करे। बुवाई से पूर्व सोयाबीन के बीज को थाइरम एवं कार्बेण्डाजिम (2:1) 3 ग्राम प्रति कि. ग्रा./हेक्टर की दर से अथवा मिश्रित उत्पाद कार्बोक्सिन 37.53 प्रतिशत थाइरम 37.5 प्रतिशत ग्राम प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। इनके स्थान पर ट्राइकोडर्मा विरिडी (8–10 ग्राम प्रति कि. ग्रा. बीज) से उपचारित किया जा सकता है। तत्पश्चात जैविक खाद ब्रेडी राइजोबियम कल्चर एवं पीएसबी कल्चर प्रत्येक 5 ग्राम प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से) उपचारित करे एवं छाया मे सूखा कर तुरन्त बुवाई करे। सोयाबीन के पोधों का उचित पोषण के लिए अनुशंसित 20:60:40:20 कि. ग्रा./हेक्टर कि दर आवश्यक नाइट्रोजन : फास्फोरस : पोटाश : गंधक कि पूर्ति बुवाई के समय विभिन्न उर्वरको के प्रयोग से देना चाहिए। फसल सुरक्षा हेतु विभिन्न जैविक (कीट/ बीमारी/खरपतवार आदि) एवं अजैविक तनावों (सूखा/अतिवृष्टि आदि) से होने वाली उत्पादन मे कमी को टालने हेतु समय समय पर खेत कि निगरानी कर उनका प्रबन्ध करें।

निरीक्षण के दौरान खेत मे पाये जाने वाले अवांछित कीट एवं रोगग्रस्त पोंधे, खरपतवार आदि को नष्ट करे। पत्तियों का आकार, फूलों के रंग फलियों के रोएँ आदि लक्षणों के आधार पर अवांछित /अलग किस्म के पोंधों कि पहचान कर उन्हे नष्ट करे। क्रांतिक अवस्थाए जैसे कि पोंधों मे फूल आना, फलिया बनना एवं दाने भरना आदि पर यदि नमी कम हो तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। बीबीएफ सीड ड्रिल या रीज फरो से बुवाई करने पर सूखा एवं अधिक वर्षा से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। फलियों का हरा रंग बदलने या पूर्णतया समाप्त होने पर यह मान ले कि फलिया परिपक्व हो चुकी हैं। इस अवस्था मे सोयाबीन कि कटाई करनी चाहिए। कटी हुई फसल को 2–3 दिन धूप मे सुखाकर थ्रेशर से धीमी गति (350–400 आर पी एम) पर गहाई करनी चाहिए और ध्यान रहे कि बीज के छिलके को क्षति नहीं होनी चाहिए। गहाई के बाद बीज को धूप मे अच्छे से सुखाकर भंडारण करना चाहिए। भंडारण गृह ठंडा, नमी रहित व हवादार होना चाहिए और ध्यान रखे कि चार से अधिक बोरियों को एक के ऊपर एक नहीं रखे। बीज की बोरियों को उचाई से नहीं पटकना चाहिए क्योकि बीज की अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

खरीफ में मूंग व उडद की उन्नत खेती से अधिक लाभ कमाये

कपिल कुमार नागर, एस.एन.मीना एवं के.सी.मीना
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

खरीफ में दालो की खेती सभी क्षेत्रो में बारानी स्थितियो के अन्तर्गत की जाती है। सामान्यत: खरीफ मौसम में मूंग व उड़द की खेती की जाती है। दालो वाली फसलों को फसल चक्र में सम्मिलित करने से भूमि की उर्वरता एवं उत्पादकता बनी रहती है क्योकि पौधो की जडो से बैक्टीरिया द्वारा वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण कर भूमि की उर्वरा शक्ति को बढाते है।

खेत की तैयारी : वर्षा होने पर एक दो बार आवश्यकतानुसार जुताई कर खेत तैयार किया जाता है। अन्तिम तैयारी के समय ध्यान रखे कि भूमि समतल हो जाये और जल निकास अच्छा हो तथा पी. एच. 6.5–8.5 हो।

भूमि उपचार : खेत में भूमिगत कीटों व दीमक की अधिकता होने पर बुवाई से पहले क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलाना चाहिए।

बीज उपचार : बुवाई से पहले प्रति किलो बीज 3 ग्राम थायरम या 0.5 ग्राम कार्बेण्डेजिम से उपचारित करना चाहिए। इसके अलावा राइजोबियम जीवाणु कल्चर के 3 पैकेट (600 ग्राम) प्रति हेक्टेयर बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करने पर अधिक पैदावार ली जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक : मूँग व उडद के लिए प्रति हेक्टेयर 10 से 20 किलो नाइटोजन व 30 से 40 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय देना चाहिए। बुवाई के 4 सप्ताह पूर्व 8 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सडी हुई खाद का प्रयोग करना चाहिए।

बीज की मात्रा एव बुवाई : एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए मूँग व उडद अकेले बोने पर 15–20 किलो बीज की आवश्यकता होती है व मिश्रित फसल के लिए 8 से 10किलो प्रति हेक्टेयर बीज काम में लिजिए। कतार से कतार की दूरी 25–30 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए। इसकी बुवाई मानसून की वर्षा होने के साथ साथ ही या यदि वर्षा देरी से हो तो 30 जुलाई तक भी की जा सकती है। मूँग व उडद को चौड़ी मेड़ एवं कूँड पद्धति (बी.बी.एफ.) विधि से तीन पंक्तियों में बुवाई करने पर कम एवं अधिक वर्षा की स्थितियों में अच्छी उपज प्राप्त होती है।

निराई – गुडाई : 25–30 दिन की फसल होने तक निराई गुडाई कर देनी चाहिए।

फसल संरक्षण

- **मोयला, हरा तेला व मक्खी :** मोयला (एफिड्स) का प्रकोप होने पर डायमिथोएट 30 ई.सी. एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से तथा फली छेदक का प्रकोप होने पर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में घोल बना कर छिडकाव करना चाहिए। इसके अलावा अजाडिराक्टिन 0.03 प्रतिशत ई. सी. का भी 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में मिलाकर छिडकाव किया जा सकता है।

- **फली छेदक:** इसका प्रकोप होने पर मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या मैलाथियान 50 ई.सी. या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. एक लीटर या कार्बेरिल 50% घुलनशील चूर्ण 2.5 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से फूल आते ही छिडकाव करें।

- **चित्ती जीवाणु रोग :** खरीफ में यह रोग जेन्थोमोनास जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग में छोटे गहरे भूरे रंग के धब्बे पत्तों पर तथा प्रकोप बढ़ने पर फलियो ओर तने पर भी दिखाई देता है। इससे पौधें मुरझा जाते है। रोग का प्रकोप होने पर एग्रीमाईसिन 200 ग्राम या 1.25 किलो कॉपर ऑक्सीक्लोराइड व 20 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन का प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में घोल बना कर छिडकाव करना चाहिए।

- **छाछ्या रोग:** इसमें पत्तियो की उपरी सतह पर शुरु में सफेद गोलाकार पाउडर जैसे धब्बे हो जाते है तथा बाद में पाउडर सारे तने तथा पत्तियों पर फैल जाता है। पत्तियां छोटी रहकर पीली पड जाती है। इसकी रोकथाम हेतु प्रति हेक्टेयर 2.5 किलो घुलनशील गंधक 0.3 प्रतिशत या डाइनेकेप 400 मिलीलीटर या एक लीटर कैराथियान 0.1 प्रतिशत के घोल का पहला छिडकाव रोग के लक्षण दिखाई देते ही एवं दूसरा छिडकाव 10 दिन के अंतर पर करना चाहिए अथवा 25 किलो प्रति हेक्टेयर गंधक चूर्ण का भुरकाव करना चाहिए।

- पीत शिरा मोजेक विषाणु रोग का प्रकोप होने पर रोग ग्रसित पौधों को उखाड देना चाहिए तथा डायमिथोएट 30 ई.सी. एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से पानी में घोल बना कर छिडकाव करना चाहिए।

- पीलिया रोग के लक्षण दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब या 0.5 प्रतिशत फास्फोरस सल्फेट का छिडकाव करना चाहिए।

कटाई एवं गहाई : फसल पकने पर फलियों के चटक कर गिरने से होने वाली हानि से बचने के लिए फसल पकने के तुरन्त बाद कटाई करनी चाहिए। खलिहान में 8–10 दिन फसल अच्छी तरह सुखने के बाद गहाई कर देना चाहिए।

उपज : इस प्रकार में उन्नत कृषि तकनीक अपनाकर औसतन 10–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर मूंग व उड़द की उपज प्राप्त की जा सकती है।

तालिका : 1 मूंग की उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं

क्र.सं.	उन्नत किस्म	जारी वर्ष	पकाव अवधि (दिनों में)	उपज प्रति हैक्टयर (क्विंटल में)	रोग व प्रतिरोधकता	विशेष विवरण
1.	के–851	1982	60–70	8–10	–	इस किस्म का दाना मोटा व चमकदार होता है तथा बाजार भाव अन्य किस्मों से ज्यादा रहता है।
2.	पी डी एम–11	1987	60–65	10–12	पीत चितेरी रोग के प्रति अवरोधी पायी गयी है।	–
3.	पी डी एम–139	2001	68–70	6–8	–	इस किस्म का दाना छोटा है।
4.	एस.एम.एल. 668	2003	60–65	15–20	थ्रिप्स व पीलिया रोग सहनशील	कम अवधि एक साथ पकाव, मोटा व चमकदार दाना
5.	आई पी एम 02–03	2009	67–70	10–14	पीत चितेरी रोग के प्रति अवरोधी पायी गयी है।	इस किस्म का दाना मध्यम आकार का होता है।
6.	एम.एच. 421	2014	60–62	10–12	पीलिया रोग अवरोधी	खरीफ व गर्मियो के लिए
7.	शिखा (आई.पी.एम.410–3)	2016	55–60	13–15	पीलिया व पाउडरी मिल्डयू रोग अवरोधी	–
8.	विराट (आई.पी.एम. 205–7)	2016	52–55	12–14	पीलिया रोग अवरोधी	–

तालिका 2 : उड़द की उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं

क्र.सं.	उन्नत किस्म	पकाव अवधि (दिनों में)	उपज प्रति हैक्टयर (क्विंटल में)	विशेष विवरण
1.	प्रताप उड़द 1 (के.पी.यू. 07–08)	72–78	9–10	तना व सफेद मक्खी कीट एवं पीला मोजेक, झुलसा व छाछ्या सहनशील तथा जीवाणु धब्बा व एंथ्रेकनोज प्रतिरोधी किस्म है।
2.	मुकुन्दरा उड़द 2 (के.पी.यू. 405)	72–78	9–10	अधिक उपज, कीट व रोगो से सहनशील तथा दाना मोटा व चमकदार
3.	कोटा उड़द 3 (के.पी.यू. 524–65)	72–75	10–12	पीला मोजेक, पत्ती धब्बा व एंथ्रेकनोज रोग से प्रतिरोधी, खरीफ व गर्मीयो के लिए उपयुक्त, एक साथ पकाव व फलिया मुख्य तने पर आती है।
4.	कोटा उड़द–4	75–80	11–12	सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा से प्रतिरोधी व पीला मोजेक से मध्यम प्रतिरोधी, खरीफ व गर्मीयो के लिए उपयुक्त,एक साथ पकाव व फलियॉ मुख्य तने पर आती है।
5.	पन्त उड़द–31	70–75	10–12	कद छोटा,पीला मोजेक रोग से प्रतिरोधी
6.	बरखा (आरबीयू 38)	70–80	10–12	दाना मोटा व चमकदार,कम पानी की जरूरत, रोगो के प्रति सहनशील
7.	टी 9	80–90	13–15	मध्यम आकार का दाना, पीला मोजेक रोग से अवरोधी
8.	पन्त उडद 19 व पन्त उडद 30	80–90	10–12	मध्यम आकार का दाना, पीला मोजेक रोग से सहनशील

हाडौती मे मूंगफली उत्पादन की संभावना और उन्नत खेती

शंकर लाल यादव, रामप्रताप यादव, संतोष देवी सामोता, गणेश नारायण यादव, रामावतार यादव, राजेन्द्र कुमार यादव, डी एल यादव एवं खजान सिंह
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, कृषि विज्ञान केन्द्र, गोनेरा कोटपुतली, जयपुर, राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान दुर्गापुरा (जयपुर) एवं उधानिकी महाविद्यालय, मंदसोर

मूँगफली को तिलहनी फसलों की ''रानी'' कहा जाता है, इसकी जड़ो में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले राइजोबियम जीवाणु पाये जाते है, जो लगभग 200 कि. ग्रा. प्रति हेक्टर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करते है। जिससे रासायनिक उर्वरको की खपत घटती है और इनसे होने वाली हानियों से भी बचा जा सकता है। साथ ही इनसे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और उत्पादकता में वृद्वि होती है। मूँगफली उष्ण कटिबन्ध (अर्ध–शुष्क) क्षेत्रों की फसल है, इसको फसल चक्र में मल्च फसल के रूप में उगाने से मृदा अपरदन को कफी हद तक रोका जा सकता है, यह फसल मृदा संरक्षण एवं जल संरक्षण को प्रोत्साहित करती है। इसके वानस्पतिक भागो से पशुओं के लिए चारा एवं खेतो के लिए कार्बनिक खाद प्राप्त होता है। इसके भूसे में 16 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन, 08–16 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 10 प्रतिशत अन्य खनिज पदार्थ पाये जाते है। इसके दानो से तेल निकालने के बाद खली बनती है जिसमें लगभग 16 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन, 10–12 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0. 7 प्रतिशत फॉस्फोरस, 0.9 प्रतिशत मेग्नीशियम, 0.2 प्रतिशत कैल्शियम एवं 1.7 शुष्क पदार्थ पाये जाते है तथा इसका उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन 7.8 प्रतिशत, फास्फोरस 1.5 प्रतिशत एवं पोटाश 1.5 प्रतिशत के साथ ही कुछ महत्वपूर्ण सुक्ष्म तत्व पाये जाते है।

प्रजातियां : मूंगफली की तीन प्रकार की प्रजातियां होती है। विस्तारी, अर्ध विस्तारी एवं झुमका किस्म जो भूमि के अनुसार बोने के काम में ली जाती है। मूंगफली की किस्में और उनकी विशेषताओं का विवरण निम्न प्रकार है।

आर.जी. 382 दुर्गा (2005) : यह किस्म फैलने वाली है जो 128 से 133 दिन मे पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 22–25 क्विटंल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म रेतीली एवं दोमट मृदा व सिंचित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है। दाने मोटे तथा गुलाबी होते है। इसके 100 दानों का वजन 59 ग्राम होता है तथा तेल की मात्रा लगभग 53 प्रतिशत है।

टी.जी. 37–ए (2004) : यह मूंगफली की 100 से 110 दिन मे पककर तैयार होने वाली झुमका किस्म है। यह दोमट एवं काली मिटटी के लिये उपयुक्त है। इसकी औसत पैदावार 18–20 क्विटंल प्रति हैक्टेयर होती है। इस किस्म की फलियों में दानों का अनुपात 64 प्रतिशत तथा 100 दानों का वजन 39 ग्राम होता है। इसमें तेल की मात्रा 51 प्रतिशत है। इस किस्म में सुषुप्तावस्था कम होती है इसलिये यदि खेत में फसल के पकते समय ज्यादा नमी हो तो 70 प्रतिशत फलियों के पकनें पर फसल की खुदाई कर लेनी चाहिये। इस किस्म की बुवाई वर्षा होने के साथ ही कर देनी चाहिये। यदि वर्षा देर से हो तो जुलाई के प्रथम सप्ताह तक अवश्य बुवाई कर देनी चाहिये।

राज दुर्गा (आर. जी. 425) : यह अर्द्ध विस्तारी किस्म, बारानी या सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं। यह किस्म 125 से 130 दिन में पक जाती हैं इसके दानो का रंग हल्का गुलाबी तथा सफेद रहता हैं। यह बारानी क्षेत्रों में लगभग 15 – 20 क्वि. प्रति हैक्टर तथा सिंचित क्षेत्रो में 32 – 36 क्वि. प्रति हैक्टर उपज देती हैं। यह गलकट (कॉलर रॉट) रोधी किस्म हैं।

राज. मूंगफली –1 (आर. जी. 510) : यह छोटी, गहरे हरे रंग की पत्तीयों वाली विस्तारी किस्म है जो 126 से 130 दिन में पक जाती हैं और रेतीली तथा दोमट मृदा व सिंचित क्षेत्रो के लिए उपयुक्त हैं। इसके 100 दानों का वजन 54 ग्राम होता हैं। इसकी फलीयों में दानों का औसत अनुपात 68 प्रतिशत होता हैं। इसकी औसत उपज 26–32 क्वि. प्रति हैक्टर हैं। यह किस्म कई बीमारीयों जैसे गलकट (कॉलर रॉट), टिक्का, विषाणु रोग आदि के लिए प्रतिरोधी हैं।

राज मूंगफली–3 (आर. जी. 559–3) : मूॅगफली की यह अर्द्ध विस्तारी किस्म हैं इसकी औसत उपज 28–34 क्वि. प्रति हैक्टर हैं जो लगभग 125–128 दिन में पककर तैयार होती हैं। यह किस्म रेतीली एवं दोमट सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त हैं। इसका दाना मोटा तथा बादामी रंग का व इसके 100 दानों का वजन लगभग 72 ग्राम तथा फलियों में दानों का अनुपात 69 प्रतिशत होता हैं। यह किस्म निर्यात के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

गिरनार–2 (2008) : यह मूंगफली की अर्ध विस्तारी 125–130 दिन में पककर तैयार होने वाली किस्म है जो दोमट मिटटी हेतु उपयुक्त है। इसका दाना मोटा व हल्के भूरे रंग का होता है एवं तेल की मात्रा 51 प्रतिशत होती है। इसके 100 दानों का वजन लगभग 50 ग्राम होता है। इसकी उपज सिंचित क्षेत्र में औसतन 25–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

आर एस वी 87 : यह अर्ध विस्तारी 120 – 130 दिन में पककर तैयार होने वाली किस्म है, जो भारी मिट्टी के लिये भी उपयुक्त है। इसमें तेल की मात्रा 50 प्रतिशत होती है। दानों का रंग गहरा गुलाबी होता है। इसकी उपज 14–16 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

आर एस 138 : इस अर्ध विस्तारी किस्म की अधिकतर फलियों में मध्यम आकार के तीन दाने होते है जिनका रंग गहरा गुलाबी होता है। 110 से 115 दिन में पककर 15–18 क्विटल औसत पैदावार देती है। इसके 100 दानों का वजन 35.5 ग्राम तथा 48 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है।

जे एल 24 : यह अल्प अवधि वाली झुमका किस्म है जो 90 दिन में पक जाती है। यह दोमट भूमि में उगाने के लिये उपयुक्त है और सूखे की स्थितियों के प्रति सहनशील है। उपज 10–15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह क्राऊन रॉट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

आर जी 141 : इस झुमका किस्म में 35 से 40 दिन में फूल आते है व 120 से 130 दिन में पककर तैयार हो जाती है । इसकी औसत पैदावार 13 से 16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना मोटा (100 दानों का वजन 20.5 ग्राम) होता है। इसके बीजों में 48.1 प्रतिशत तेल की मात्रा होती है।

खेत की तैयारी : मूंगफली विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। रेतीली दोमट एवं भारी मटियार दोमट भूमि में अलग अलग जाति की मूंगफली बोई जाती है। एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद में देशी हल से या हैरों से 2 से 3 बार खेत की जुताई करें, ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाये और इसके बाद पाटा चला कर बुवाई के लिये खेत तैयार करे।

जैविक फसल : मूंगफली की जैविक खेती के लिए बुवाई के समय जैविक खाद (वर्मीकम्पोस्ट) 5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से डालें एवं खड़ी फसल में 40 दिन पश्चात् तरल जैविक खाद (20 प्रतिशत) का 15 दिन के अन्तराल पर तीन छिड़काव करें। या 10 टन मुर्गी की खाद एवं 500 कि.ग्रा. नीम की खली प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय देवें व बीज को 4 ग्राम ट्राईकोडरमा प्रति कि. ग्रा. बीज से उपचारित करके बुवाई करें एवं बीज को राजोबियम, पी.एस.बी. एवं पी.जी.पी.आर से उपचारित करके बुवाई करे। खडी फसल में कीट नियन्त्रण के लिय 2 प्रतिशत नीम के तेल का घोल बनाकर छिडकाव करें।

उर्वरक : मूंगफली में बुवाई के पहले 20 कि. ग्रा. नत्रजन और 60 कि. ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर तथा पोटाश की कमी वाली भूमि में 30 कि. ग्रा. पोटाश का प्रयोग करें। फास्फोरस तत्व की पूर्ति सिंगल सुपर फास्फेट द्वारा किया जाना उचित रहता है। सिंचित क्षेत्रों में बुवाई से एक या दो सप्ताह पूर्व भूमि में प्रति हैक्टर 375 किग्रा जिप्सम मिलाकर सिंचाई कर दें एवं जिप्सम तीन वर्ष में एक बार दिया जावे। असिंचित क्षेत्रों में 15 कि. ग्रा. नत्रजन एवं 20 कि. ग्रा. फॉस्फोरस तथा 250 कि. ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टेयर की दर से ऊर कर देवें। बोरोन की कमी वाली भूमि में 10 कि. ग्रा. बोरेक्स (सोडियम बोरेट) प्रति हैक्टेयर बुवाई से पूर्व देवें।

बीज उपचार

फफूंदनाशी से उपचार : गलकट (कॉलर रॉट) से बचाव के लिये बुवाई से पहले 3 ग्राम थाईरम या 2 ग्राम मैन्कोजेब प्रति कि. ग्रा. बीज को उपचारित करें। जहॉ पर रासायनिक फफूंदनाशी का कम उपयोग करना हो तो बीज को क्रमशः थाइरम (1.5 ग्राम), ट्राइकोडरमा (10 ग्राम) प्रति कि. ग्रा. बीज तथा राइजोबिया कल्चर से उपचारित करे। इसके साथ ही बुवाई से पूर्व ट्राईकोडरमा 2.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से 500 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर भूमि में मिलाये यह उपचार गलकट (कॉलर रॉट) रोग के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है।

कीटनाशी से उपचार : सफेद लट की रोकथाम के लिये मूंगफली की फसल में 6.5 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड 48 एफ एस प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करने से सफेद लट का प्रभावी नियंत्रण होता है। राइजोबियम व पी एस बी कल्चर/जैव–उर्वरक 5 मिली प्रति किलोग्राम बीज दर से उपचारित करने के बाद बीजों को छाया में सुखाकर शीघ्र बुवाई करें।

बीज एवं बुवाई : झुमका किस्मों का 100 कि. ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त हैं। इन किस्मों हेतु कतार से कतार की दूरी 30 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सेन्टीमीटर रखना चाहिए। फैलने वाली एवं अर्द्धविस्तारी किस्मों का 80 कि. ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर बोना चाहिए तथा कतार से कतार की दूरी 40 से 45 सेन्टीमीटर एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सेन्टीमीटर रखना चाहिए। बुवाई का उपयुक्त समय जून प्रथम सप्ताह से दूसरे सप्ताह तक है।

सिंचाई : सूखा पड़ने पर आवश्यकतानुसार 1–2 सिंचाईयां खासतौर पर सुइया बनते समय और दाना बनते समय अवश्य करें। जहां एक ही सिंचाई के लिये पानी उपलब्ध हो वहां इस सिंचाई का प्रयोग बुवाई के बाद 55–75 दिन की अवधि में सुइया बनते समय करें। फव्वारा पद्वति द्वारा सिचाई करने के लिये एक फव्वारे का 50–60 प्रतिशत छिडकाव क्षेत्र दूसरे फव्वारे के छिडकाव क्षेत्र से आच्छावित करते हुये प्रत्येक सिंचाई में 4 घंटे तक फव्वारों को चलाकर सिंचाई करे। दो छिद्रो वाले फव्वारे में स्त्राव 0.45–0.50 लीटर प्रति सेकण्ड प्रति फव्वारा तथा जल का दाब 1.75 से 2.0 मि.ग्रा. प्रति वर्ग सेमी. रखे।

निराई गुड़ाई : 30 दिन की फसल होने तक निराई गुड़ाई पूरी कर लेना चाहिए। बुवाई के एक माह बाद झुमका किस्म के पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढानी चाहिए। जमीन में मूंगफली की सुईया बनना शुरू होने के बाद गुड़ाई बिल्कुल न करें। जहां निराई गुड़ाई करना मुश्किल हो वहां पर सिंचित फसल में खरपतवार नियन्त्रण के लिये खेत में आखिरी जुताई से पूर्व एक कि. ग्रा. फ्लूक्लोरेलिन (सक्रिय तत्व) को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। ध्यान रहे कि रसायन जुताई के समय भूमि में मिल जाये। तत्पश्चात मूंगफली की बुवाई कतारों में करें या पैण्डीमिथेलिन एक कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद किन्तु बीज उगने से पहले एक सार छिड़काव करें।

पौध वृद्वि : मूंगफली की फसल में अधिक उपज के लिये 0.1 प्रतिशत थायोयूरिया अथवा 0.01 प्रतिशत थायोग्लाइकोलिक अम्ल के घोल का दो छिडकाव 30 व 60 दिन की फसल अवस्था पर करें। ध्यान रखें की थयाग्लाइकोलिक अम्ल शरीर के किसी भी अंग पर न पडे एवं छिडकाव रबर के दस्ताने पहन कर करें। मूंगफली में अधिक उत्पादन हेतु नेप्थलिन

एसेटिक एसिड का 50 पी.पी.एम. का प्रथम छिडकाव 35 दिन पर एवं दूसरा छिडकाव 45 दिन की अवस्था पर करें।

पौध संरक्षण

कातरा : मिथाईल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें या मिथाईल पैराथियॉन 50 ई सी 750 मिलीलीटर या मिथाईल डिमेटॉन 25 ई सी एक लीटर दवा का पानी में घोल बनाकर प्रयोग करें।

दीमक : खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर 4 लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई सी प्रति हैक्टेयर सिंचाई के पानी के साथ दीजिये।

मोयला : मैलाथियॉन 5 प्रतिशत या मिथाईल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें या मिथाईल पैराथियॉन 50 ई सी 750 मिलीलीटर या मिथाईल डिमेटॉन 25 ई सी एक लीटर दवा का पानी में घोल बनाकर प्रयोग करें।

सफेद लट नियंत्रण : इस कीट की प्रोढ अवस्था (बीटल) व लट अवस्था दोनों ही नुकसान करती है। फसलों में लट द्वारा नुकसान होता है जबकि पेड़ पौधों में कीट द्वारा नुकसान होता है।

प्रौढ़ कीट (भृंग नियंत्रण) : मानसून या इससे पूर्व की भारी वर्षा एवं कुछ क्षेत्रों के खेतों में पानी लगने पर जमीन से भृंगो का निकलना शुरू हो जाता है। भृंग रात के समय जमीन से निकल कर परपौषी वृक्षों जैसे खेजड़ी, बेर, नीम, अमरूद एवं आम आदि पर बैठते हैं। परपोषी वृक्ष अधिकतर है। भृंगों का निकलना 4–5 दिन तक चालू रहता है। भृंग निकलने के तीन दिन बाद अंडे देना शुरू होता है इसलिये तुरन्त छिड़काव लाभदायक है। क्यूनॉलफॉस 25 ई.सी. 36 मिली लीटर या कार्बोरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 72 ग्राम एक पीपे पानी (18 लीटर) में मिलाकर छिड़काव करें। जहां वयस्क भृंगों को परपौषी वृक्षों से रात में पकड़ने की सुविधा हो उन जगहों पर भृंग निकलने के बाद रात को करीब 9 बजे बांसों की यता से परपोषी पेड़ों (पेड़ों पर बैठे भृंगो) को हिला कर भृंगों को नीचे गिराये एवं एकत्रित कर मिट्टी के तेल के पानी (एक भाग मिट्टी का तेल एवं 20 भाग पानी) में डालकर नष्ट करें।

लटों वाली अवस्था में नियंत्रण : 80 किलो बीज में 2 लीटर क्लोरोपायरिफॉस 20 ई.सी. रसायन मिलाकर बुवाई करें। फोरेट 10 प्रतिशत कण या क्यूनॉलफॉस 5 प्रतिशत कण या सेवीडोल 4 : 4 कण 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व हल द्वारा कतारों में उर कर देवें तथा उन्ही कतारों पर बुवाई करे।

टिक्का रोग : मूंगफली में टिक्का रोग फसल उगने के 40 दिन बाद दिखाई देता है। इस रोग से फसल के पौधों की पत्तियों पर मटियाले गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है। इस बीमारी की रोकथाम के लिये रोग दिखाई देते ही कार्बनडेजिम आधा ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का अथवा डेढ़ कि.ग्रा. मैन्कोजेब का प्रति हैक्टेयर छिड़काव कीजिये। इसके बाद 10 से 15 दिन के अन्तर पर दो बार ऐसे छिड़काव और कीजिये।

पीलिया रोग : जिन खेतों में मूंगफली की फसल को पीलिया रोग होता है वहां तीन साल में एक बार बुवाई से पूर्व 250 कि. ग्रा. गंधक प्रति हैक्टेयर डालिये। इसके अभाव में हरा कसीस (फेरस सल्फेट) 0.5 प्रतिशत या गंधक के अम्ल के 0.1 प्रतिशत घोल का फसल में फूल आने से पहले एक बार तथा फूल आने के बाद दूसरी बार छिड़काव करके भी पीलिये का नियन्त्रण किया जा सकता है। इस घोल में थोडी मात्रा में साबुन आदि अवश्य मिलाइये।

विषाणु गुच्छा रोग (क्लम्प वाइरस) : उचित समय पर (जून का प्रथम पखवाडा) बुवाई करने से इस रोग का प्रकोप कम होता है। रोग ग्रसित क्षेत्र में बाजरे की बुवाई 100 किलों ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से करे व 15 दिन बाद बाजरे को पलटकर मूंगफली की बुवाई करे। इससे विषाणु गुच्छा रोग में 90 प्रतिशत की कमी आंकी गई है। यह उपचार जल्दी व समय पर बोई जाने वाली मूंगफली की फसल में प्रभावी पाया गया है। अथवा बुवाई के समय ब्लाइटोक्स 50 कवकनाशी 10 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से या 200 मि.ग्रा. प्रति लीटर का घोल बनाकर लाइनो में डाले।

खुदाई : मूंगफली की पत्तियां जब पीली पड़ने लगे तो सिंचाई करके अथवा बत्तर आने पर पौधो को उखाड़ लीजिये। इन पौधों को छोटी छोटी ढेरियों के रूप में 7 से 10 दिन तक धूप में सुखाये और उसके बाद मूंगफली को तोड़कर अलग निकाल लीजिये।

भण्डारण : मूंगफली को अच्छी तरह सुखाकर ही भण्डार में रखें। किसी भी हालत में मूंगफली के दानों में नमी की मात्रा 8–10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिये अन्यथा बीज पर एस्परजिलस नामक फफूंद लग जाती है। जिससे एक विषैला पदार्थ (एफ्लाटोक्सिन) जमा होना शुरू हो जाता है। इससे ग्रस्त बीजों को खाना घातक सिद्ध होता है। मूंगफली का भण्डारण पोलीलाइन्ड गनी बेग्स में करना अधिक उपयुक्त पाया गया है।

मृदा एवं जल परीक्षण : महत्व एवं तकनीकी

उदिति धाकड़, राजेन्द्र यादव, बलदेव राम, चमन जादौन एवं हरफूल मीणा
कृषि महाविघालय,कोटा एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

कृषि में मृदा, परीक्षण मृदा के नमूने की रासायनिक जांच है जिससे भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा के बारे में जानकारी मिलती है। इस परीक्षण का उद्देश्य भूमि की उर्वरकता मापना तथा यह पता करना है कि उस भूमि में कौन से तत्वों की कमी है। मृदा पोषक तत्वों का भंडार है तथा पौधों को सीधे खडा रहने के लिए सहारा देती है। पौधों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। यह अनिवार्य पोषक तत्व है। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्निशियम एवं सल्फर (मुख्य या अधिक मात्रा मे लगने वाले आवश्यक पोषक तत्व) इन पोषक तत्वों मे से प्रथम तीन तत्वों को पौधे प्रायः वायु व पानी से प्राप्त करते है तथा शेष 14 पोषक तत्वों के लिये ये भूमि पर निर्भर होते है । सामान्यतः ये सभी पोषक तत्व भूमि में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध रहते है। परन्तु खेत में लगातार फसल लेते रहने के कारण मिट्टी से इन सभी आवश्यक तत्वों का अवशोषण व ह्रास निरन्तर होता रहता है। असन्तुलित पौध पोषण की दशा में फसलो की वृद्धि समुचित नहीं हो पाती तथा पौधो के कमजोर होने एवं रोग व्याधि, कीट आदि से ग्रसित होने की सम्भावना अधिक रहती है। परिणामस्वरूप फसल उत्पादन कम होता है। इसके अतिरिक्त उर्वरक भी काफी महंगे होते जा रहे है। अतः इन पोषक तत्वों को खेत में आवश्यकतानुरूप ही उपयोग करना चाहिए जिससे खेती लाभदायक बन सकें। खेतो में उर्वरक डालने की सही मात्रा की जानकारी मिट्टी परीक्षण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अतः मिट्टी परीक्षण उर्वरकों के सार्थक उपयोग व जल परीक्षण बेहतर फसल उत्पादन हेतु नितान्त आवश्यक है।

मृदा परिक्षण के उद्देश्य

- मृदा परीक्षण से यह ज्ञात होता है, कि मिट्टी में किन पोषक तत्वों की कमी या अधिकता है, ताकि उसमें सुधार किया जा सके।
- किसी क्षेत्र विशेष में मिट्टी में उत्पन्न दोष जैसे अम्लीयता, क्षारीयता, लवणता इत्यादि की पहचान व जांच के आधार पर भूमि सुधारकों की मात्रा व प्रकार की सिफारिश कर भूमि को फिर से कृषि योग्य बनाने में योगदान करना।
- मृदा की उपजाऊ शक्ति का पता लगाना और उसी के अनुसार विभिन्न फसलों के लिए खाद एवं उर्वरकों की संतुलित मात्रा के प्रयोग की सिफारिश करना।
- किसी क्षेत्र में उर्वरकों के प्रयोग से होने वाली अतिरिक्त उपज का आंकलन करना।
- मृदा परीक्षण के आधार पर मिट्टी उर्वरकता मानचित्र बनाना एवं उनमें होने वाले परिवर्तनों का समय–समय पर अध्ययन करना।
- किसी गांव, विकास खंड, तहसील, जिला, राज्य की मृदाओं की उर्वरा शक्ति को मानचित्र पर प्रदर्शित करना तथा उर्वरकों की आवश्यकता का पता लगाना। इस प्रकार की सूचना प्रदान कर उर्वरक निर्माण, वितरण एवं उपयोग में सहायता करना।

नमूना लेते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियां

- मृदा का नमूना इस तरह से लेना चाहिए जिससे वह पूरे खेत की मृदा का प्रतिनिधित्व करें। जब एक ही खेत में फसल की वृद्धि में या जमीन के गडन में, रंग व ढलान में अंतर हो या फसल अलग–अलग बोयी जानी हो या प्रबंध में अंतर हो तो हर भाग से अलग नमूने लेने चाहिए। यदि उपरोक्त सभी स्थिति खेत में एक जैसी हो तब एक ही नमूना लिया जा सकता है। ध्यान रहे कि एक नमूना ज्यादा से ज्यादा दो हैक्टेयर से लिया जा सकता है।
- मृदा का नमूना खाद के ढेर, पेडों, मेडों, ढलानों व रास्तों के पास से तथा ऐसी जगहों से जो खेत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है न लें।
- मृदा के नमूने को दूषित न होने दें। इसके लिए साफ औजारों से नमूना एकत्र करें तथा साफ थैली में डालें। ऐसी थैली काम में न लाएं जो खाद एवं अन्य रसायनों के लिए प्रयोग में लाई गई हो।
- मृदा का नमूना बुआई से लगभग एक दो माह पूर्व मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेज दें जिससे समय पर मृदा की जांच रिर्पोट मिल जाएं एवं उसके अनुसार उर्वरक एवं सुधारकों का उपयोग किया जा सके।
- यदि खडी फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई दें और मृदा का नमूना लेना हो तो फसल की कतारों के बीच से नमूना लेना चाहिए।
- जिस खेत मे कंपोस्ट, खाद, चूना, जिप्सम तथा अन्य कोई भूमि सुधारक तत्काल डाला गया हो तो उस खेत से नमूना न लें।
- मृदा के नमूने के साथ सूचना पत्र अवश्य डालें जिस पर साफ अक्षरों में नमूना संबधित सूचना एवं किसान का पूरा पता लिखा हो।

मृदा नमूने लेने के औजार

नमूना लेने का समय

- मिट्टी का परीक्षण फसल बुवाई एवं रोपाई के एक माह पूर्व करवाना चाहिए।
- सघन खेती वाले खेतों का परीक्षण प्रति वर्ष करना चाहिए।
- जिस खेत में वर्ष में एक फसल लेते है, वहा दो या तीन वर्ष में एक बार मिट्टी का परीक्षण अवश्य कराना चाहिए।

मिट्टी के नमूने लेने की विधि

- खेत को समान गुणों वाले भागों में बांटकर अलग–अलग नमूने एकत्र करें।
- आधा हेक्टेयर खेत से एक नमूना लेना चाहिये।
- जिस खेत का नमूना लेना हो उसके 15 से 20 स्थानों पर निशान लगा दें।

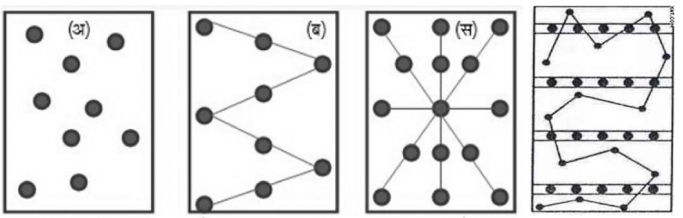

- जिस स्थान पर निशान लगायें हैं, उस स्थान के ऊपरी सतह से घास–फूस, कंकड़, पत्थर हटा देना चाहिए।
- मृदा नमूना फाबड़े या खुरपी की सहायता से 'V' आकार का 15 सेंटीमीटर गहराई तक गढ्ढा खोदकर इनकी मिट्टी अलग कर दें, फिर इसको दीवार के साथ पूरी गहराई तक मिट्टी का समान मोटाई (दो सेंटीमीटर) में मिट्टी की परत काटकर निकाल लें।

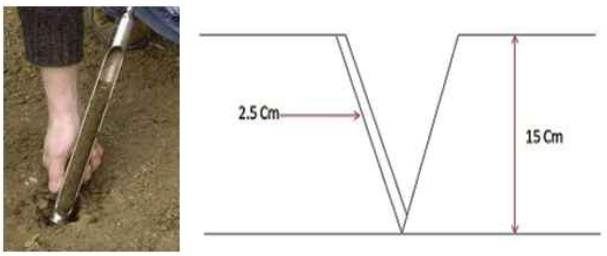

- इस प्रकार खेत के बाकी 15 से 20 स्थानों से भी मिट्टी का नमूना लें, इन सभी नमूनों का किसी साफ कपडे या पालिथीन पर अच्छी तरह मिला लें नमूना लिये हुए मिट्टी को एक वर्गाकार या गोलाई में फैलाकर चार भागों में बांट ले और आमने–सामने के दो भागों को रखकर बाकी फेंक दें।

- इस प्रक्रिया को तब तक दोहराना चाहिये, जब तक मिट्टी का कुल नमूना भार लगभग 500 ग्राम न रह जाए ।
- यदि मृदा सख्त हो तो इसके लिए बर्मे का प्रयोग भी किया जा सकता है और नरम मृदा के लिए ट्यूब ऑगर्स का प्रयोग किया जा सकता है।
- इसके बाद मिट्टी के नमूने को लेकर एक साफ थैली में रखकर उस पर नाम, पता, नमूना संख्या और पहचान चिन्ह लिख दिया जाना चाहिए।
- दो से चार दिनों में ही इन नमूनों को परीक्षण के लिए नजदीक के प्रयोगशाला में भेजना चाहिए।

मिट्टी परीक्षण के मापदंड

मिट्टी का परीक्षण निम्न मापदंडों के आकलन के लिए किया जाता है।

- **समस्या से संबंधित:** लवणता, अम्लता, क्षारीयता व प्रदूषण की जांच की जाती है जो फसलोत्पादन को प्रभावित करती है।
- **पोषक तत्वों की उपलब्धता:** मिट्टी परीक्षण का यह मुख्य मापदंड है जिसमें विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा का पता लगाया जाता है। जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस पोटाश, गंधक, जस्ता, लोहा, कॉपर, मैग्नीज, बोरोन आदि।
- **सहायक परीक्षण:** इस वर्ग में वो मापदंड आते हैं जो पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं तथा उर्वरक व अन्य सुधारक की मात्रा इन पर निर्भर करती है। इसमे कैल्सियम कार्बोनेट एवं मिट्टी कागणाकार आदि शामिल है।
- **विशेष परीक्षण :** इस प्रकार के परीक्षण विशेष परिस्थितियों में किए जाते हैं, जैसे कि मिट्टी के स्वास्थ्य संबंधी कुल जैविक मास बीमारियों के कारक सूत्रकृमि व कुछ रसायन परीक्षण जो कि फसलोत्पादन में बहुत हानि पहुंचाते हों।

पानी के नमूने लेना

- ऊसर भूमि की अधिकतर समस्याएँ खराब पानी से सिंचाई करने से उत्पन्न होती है। जब मिट्टी परीक्षण के लिए प्रयोगशाला में भेजी जा रही हो तो साथ में पानी का नमूना भेजना भी आवश्यक है ताकि पानी की गुणवत्ता का ज्ञान हो जाए और उसी के अनुरूप प्रबंध क्रियाएँ की जा सकें।
- जहां तक सम्भव हो पानी का नमूना लेने के लिए प्लास्टिक की बोतल प्रयोग करनी चाहिए। प्लास्टिक की बोतल न होने पर कांच की बोतल का भी प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन ध्यान रहे किसी भी रसायन या दवाई वाली बोतल को काम में न लें। नमूना लेने से पहले बोतल को उसी पानी से 5–7 बार धो लेना चाहिए।

कुएँ के पानी का नमूना: नमूना लेने से पूर्व एक दो धण्टे पम्प चलना चाहिए। पम्प न होने पर किसी साफ बाल्टी द्वारा 8–10 बार पानी से अच्छी तरह डुबोकर नमूना लेना चाहिए। लगभग आधा लीटर (500 मिली लीटर) पानी परीक्षण हेतु पर्याप्त है। पानी की बोतल ऊपर तक भरी हुई एवं सीलबंद होनी चाहिए एवं पहचान के लिए उन पर लेबल लगे होने चाहिए, जिसमें समस्त आवश्यक जानकारी दी जानी चाहिए।

ट्यूबवेल के पानी का नमूना: नमूना लेने से पूर्व पम्प को 10–15 मिनिट तक चलाएँ तथा बोतल को उसी पानी से 5–7 बार ढक्कन सहित धोयें। लगभग आधा लीटर पानी परीक्षण हेतु लाएँ।

सतही (नहरी) के पानी का नमूना: एक दो घण्टे सिंचाई करने के बाद बहते हुए पानी से नमूना लेना चाहिए।

मिट्टी/पानी के नमूने के साथ निम्न सूचनाएँ आवश्यक रूप से अंकित कर भेजी जानी चाहिए।

- किसान का नाम
- खेत का खसरा नंबर या नाम
- नमूना लेने की गहराई
- सिंचित/असिंचित
- पूर्व मे बोई गई फसल को दी गई उर्वरक की मात्रा
- पत्र व्यवहार का पूरा पता व मोबाइल नं.
- पिछली बोई गई और आगामी प्रस्तावित फसल
- खेत की स्थलाकृती
- नमूना लेने का दिनांक
- अन्य कोई विशेष विवरण

मिट्टी परीक्षण और व्याख्या

मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा परीक्षण के बाद, रिपोर्ट तैयार करके, उनकी व्याख्या एवं उपयोग निम्न प्रकार करें। मिट्टी परीक्षण के आंकड़ों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके विशेष सिफारिशें की जा सकती है जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाकर उससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

तालिका : 1 विद्युत चालकता (1:2 के अनुपात में) की व्याख्या

विद्युत चालाकता	व्याख्या	सिफारिशें
<1.0	सामान्य मिट्टी, किसी भी फसल के लिए उपयुक्त	कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है
1.0-2.0	सीमांत लवणीयता है, फसलों के बीज अंकुरण के लिए हानिकारक हो सकते है	भारी मिट्टियों में सुधार की आवश्यकता हो सकती है (हल्की मिट्टी में वांछनीय)
>2.0	अत्यधिक लवणीय है, फसलों के लिए हानिकारक हो सकते हैं	भारी मिट्टियों में निश्चित रूप से सुधार की जरूरत है। विशेष रूप से जब संवेदनशील व अर्ध–लवण–सहनशील फसलें उगानी हों।

तालिका : 2 मिट्टी अभिक्रिया (1:2 के अनुपात में) की व्याख्या

विद्युत चालाकता	व्याख्या	सिफारिशें
<1-0	अम्लीय मिट्टी है, कुछ फसलों के लिए अनुपयुक्त हो सकती है	चूना व कार्बनिक खादों से सुधार की आवश्यकता होगी।
6.0-8.5	सभी फसलों के लिए उपयुक्त है	कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है।
8.6-9.0	क्षारीय है, कुछ फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है	भारी मिट्टियों में सुधार की आवश्यकता होगी। हल्की मिट्टी में वांछनीय। इसके लिए जिप्सम व कार्बनिक खादों के उपयोग की आवश्यकता है।
>9.0	अत्यधिक क्षारीय हैं, फसालों के लिए हानिकारक हो सकता है	मिट्टियों में निश्चित रूप से सुधार की आवश्यकता होगी। जिसके लिए जिप्सम, हरी खाद व कार्बनिक खादों का उपयोग किया जाना चाहिए।

तालिका : 3 मिट्टी उर्वरता (प्राथमिक तत्वों) की व्याख्या

मिट्टी	जैविक कार्बन (%)	उपलब्ध पोषक तत्व (कि.ग्रा./हे.)			व्याख्या
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	
निम्न	< 0.50	< 280	< 11	< 120	पोषक तत्वों की कमी
मध्यम	0.5–0.75	280–560	11–25	120–280	पोषक तत्व सामान्य है
उच्च	> 0.75	> 560	> 25	> 280	पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक है

तालिका : 4 गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के स्तर।

पोषक तत्व	मिट्टी में कमी के स्तर (मि.ग्रा/कि.ग्रा.)
गंधक	10
लोह	4.5
मैग्नीज	2.0
जस्ता	0.6
बोरोन	0.5
कॉपर	0.2
मॉलीब्डेनम	0.1

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रयोग से पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से न केवल वातावरण को सुरक्षित रखा जा सकेगा, बल्कि इनके प्रयोग से फसलोत्पादन की उत्पादन लागत को काफी कम किया जा सकता है तथा मिट्टी की उर्वरता एवं उत्पादकता को कायम रखा जा सकता है। इसलिए मृदा परीक्षण अधिक अन्न उत्पादन के साथ–साथ समस्याग्रस्त मृदाओं के सुधार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है तथा किसानों को इस सुविधा का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाना चाहिए।

राजस्थान में बाजरे की लाभप्रद खेती

शिशराम जाखड़ एवं रामदेव सुतालिया
कृषि अनुसंधान उप केन्द्र, समदडी–बाड़मेर 344021

बाजरे को "पोषण का पावर हाउस" कहा जाता है क्योंकि इसमें उचित मात्रा और गुणवत्ता में मुख्य और सुक्ष्म पोषक तत्व जैसे आयरन, जिंक, कैल्शियम, मैग्नीशियम, कॉपर, मैंगनीज, फॉस्फोरस, फोलिक एसिड और राइबोफ्लेविन पाये जाते है। जो जीवन को स्वस्थ बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। अन्य खाद्य फसलो की तुलना में बाजरे के दानों में सर्वाधिक मात्रा में वसा पाई जाती है साथ ही यह शुष्क और अर्ध–शुष्क उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में मवेशियों को अच्छी गुणवत्ता वाला चारा प्रदान करता है, तथा मजबूत और त्वरित वृद्धि के कारण मूल्यवान फसल के रूप में मान्यता है। हमारे देश के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाले मोटे अनाजों में बाजरे का महत्वपूर्ण स्थान है। देश में चावल, गेहूं और ज्वार के बाद बाजरा चौथी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। राजस्थान की प्रतिकूल दशाये जेसे अनिश्चित वार्षिक वर्षा, आंतरायिक सूखा, उच्च वायु वेग, उच्च वाष्पीकरण, मुख्य रूप से दोमट रेत, कम कार्बनिक पदार्थ, कम नमी भंडारण क्षमता व पौधों के लिए नमी की कमी आदि है। इन सब के बावजूद बाजरे की फसल को राजस्थान में व्यापक रूप से उगाया जाता है। क्योकि इस फसल में अद्‌भुत गुण हैं जेसे लंबे समय तक सूखा सहन करने की क्षमता, उच्च नमी का उपयोग, मिट्टी की गहरी प्रोफाइल से नमी निकालने की दक्षता और क्षमता, ओर उत्कृष्ट प्रकाश संश्लेषक तंत्र पत्तियाँ, आदि विशेषताओं के कारण बाजरे को राजस्थान में लाभप्रद खेती के रूप में उगाया जाता है।

बाजरा खाने के फायदे : एनर्जी के लिए बाजरा की रोठी उर्जा का एक अच्छा स्रोत है। कोलेस्ट्रोल लेवल को कम करता है तथा डायबिटीज व कैंसर से बचाव करता है।

खेत की तैयारी : सिंचित बाजरे की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी जिसमे जल निकास की पूरी व्यवस्था हो तथा खेत को समतल कर लें, प्रथम वर्षा होते ही अच्छी जुताई करके बुवाई करे, तथा बुवाई से 2–3 सप्ताह पहले प्रति हेक्टेयर 10–12 टन अच्छी सडी हुई गोबर की खाद डाले।

भूमि उपचार : भूमि गत कीड़ो एव दीमक की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व भूमि उपचार करना आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप है वहा दीमक की रोकथाम हेतु क्युनोल्फॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हेक्टयर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व मिला देवे, तथा कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग नही करे, साथ ही खेत में से फसल के सूखे अवशेष हटा दे।

तालिका : 1 बाजरा की उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं

उन्नत किस्म	पकाव अवधि (दिनों में)	ऊंचाई (से.मी.)	औसत उपज (क्विंटल प्रति है.)		प्रमुख विशेषताऐं
			दाने	चारा	
आर एच बी 121 (2001)	75-78	165-175	22-25	26-29	जोगिया (ग्रीन ईयर) रोग रोधी, मध्यम सूखा सहन करने की क्षमता, सिट्टे पर रोये आदि।
सी जेड पी 9802 (2002)	70-75	185-200	13	-	चमकीले पत्ते, सिट्टे बिना बाल वाले कसे और हल्के कसे, परागण बैगनी से भूरे रंग के व जोगिया (ग्रीन ईयर) रोग रोधी किस्म।
जी एच बी 538	70-75	155-165	24	42	किस्म के सिट्टे सख्त, बेलनाकार व बिना रोये के 22–25 से.मी. लम्बे तथा परागण पीले रंग के, जोगिया (ग्रीन ईयर) रोग रोधी किस्म।
एच एच बी 67–2 (2005)	62-65	160-180	20-22	20-25	किस्म के सिट्टे सख्त, रोये के 22–25 से.मी. लम्बे तथा परागण पीले रंग के, जोगिया (ग्रीन ईयर) रोग रोधी किस्म, सूखे के प्रति सहनशील।
आर.एच.बी. 173 (2009)	78-80	190-200	30-33	68-77	किस्म के सिटटो की लम्बाई 30–35 से.मी. , मध्यम व कम वर्षा वाले क्षेत्रों।
आर.एच.बी. 177 (2010)	74	150-160	18-20	42-43	किस्म के सिट्टे रोये युक्त, बेलनाकार दानो से कसा हुआ, सुखा प्रतिरोधक क्षमता, अत्यंत शुष्क क्षेत्र के लिए उपयोगी है।
एम बी एस 2 (2011)	74-78	150-175	12-18	36-50	किस्म के सिट्टे पूरी तरह से बाहर निकले, सिट्टे की लम्बाई 20–22 से.मी., जोगिया (ग्रीन ईयर) रोग रोधी किस्म।
जी. एच. बी. 905 (2012)	75-80	-	27	-	किस्म के सिट्टे ठोस व सुखा प्रतिरोधी।
एम. पी. एम. एच. 17 (2012)	79	175-185	26-28	61-69	किस्म के सिट्टे बालो युक्त तथा जोगिया (ग्रीन ईयर) रोग रोधी किस्म, दाना पिला भूरा गोलाकार।
एम. पी. एम. एच. 21 (2016)	75	169	24	48	किस्म के सिट्टे की लम्बाई 20 से.मी., मृदुरोमिल आसिता व ब्लास्ट रोग के प्रति अत्यधिक प्रति रोधी तथा स्मट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी।

भूमि पर पपड़ी की समस्या का उचित प्रबन्धन : यह समस्या खरीफ की फसलो खास तोर पर बाजरे के खेत में अत्यधिक देखने को मिलती है जिसे स्थानीय भाषा में रोड़ जाना भी कहते है। मरुस्थलीय भूमि रेतीली मिट्टी होने के बावजूद सतह पर पतली पपड़ी बनने की समस्या आती है, पपड़ी बनने की वजह से बीज के अंकुरण में रुकावट पैदा होती है तथा खेत में पोधो की संख्या नही के बराबर रह जाती है इस समस्या के निदान हेतु केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा विकास की गयी एक तकनीक है। इस विधि में गोबर की सड़ी खाद या मिंगणी की खाद को 10 टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से बाजरे की बुवाई के तुरन्त बाद बोई गई कतारों पर डाला जाता है जिससे भूमि की सतह पर पपड़ी की समस्या से निजात पाया जा सकता है। यदि देशी खाद की उपलब्धता नही हो तो ऐसे में बाजरे की फसल में रोड़ की समस्या के निदान हेतु कृषि अनुसंधान केन्द्र, मंडोर द्वारा एक सरल तकनीक विकसित की गयी है जिसमे बाजरा की बुवाई के समय ट्रेक्टर चालित सीड ड्रील के प्रत्येक हल के पीछे 4 किलोग्राम वजन के घुमने वाला रबड़ का पहिया लोहे की पतियों के सहारे लगाया जाता है इन पतियों द्वारा बोई गई कतारों के चोब की मिट्टी को दबने से बीज व मृदा जल का अच्छा सम्पर्क होने के कारण बीज का अंकुरण जल्दी होता है।

बीजोपचार : गुन्दिया या चेपा से बचने हेतु बीज को नमक के 20 प्रतिशत घोल में लगभग पांच मिनट तक डुबो कर हिलाए और तैरते हुए हल्के बीजों को अलग निकाल देवे। बाद में साफ पानी से धोकर अच्छी प्रकार से छाया में सुखाने के बाद, 3 ग्राम थाईरम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करे व दीमक की रोकथाम हेतु इमिडाक्लोप्रिड 600 एफ.एस. प्रति किलोग्राम की दर से बीजोपचार करें।

बुवाई व बीज दर : बुवाई के समय खेत में नमी का होना आवश्यक है, सिंचित क्षेत्रों में जुलाई के प्रथम पखवाड़े में बुवाई कर देनी चाहिए, असिंचित क्षेत्रों में पहली वर्षा के बाद खेत में पर्याप्त नमी रहे उस समय बुवाई कर देनी चाहिए, सामान्यत 4 किलोग्राम बाजरे का प्रमाणित बीज प्रति हेक्टेयर की दर से, कतार से कतार की दूरी 45–60 से.मी में रखते हुए बुवाई करे।

खाद व उर्वरक : बाजरे की फसल से अच्छी उपज लेने के लिए देशी गोबर की खाद के साथ उपयुक्त मात्रा में उवर्रक भी देवे, असिंचित क्षेत्रो में 40 किलोग्राम नत्रजन एवं 20 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर देवे। नत्रजन आधी तथा फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई से पहले कतारों में 10 से.मी. गहरा ऊर कर देवे। बुवाई के 25–30 दिन बाद वर्षा होने पर, नत्रजन की शेष आधी मात्रा देवे।

सिंचाई व निराई गुड़ाई : सिंचित फसल की आवश्यकतानुसार समय–समय पर सिंचाई करें पौधो में फुटान होते समय, सिट्टे निकलते समय तथा दाना बनते समय भूमि में नमी की कमी नही होनी चाहिए। वर्षा की कमी की स्थिति में पौधे पीले पड़ने से पहले ही सिंचाई करे प्रभावी ढंग से खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए बुवाई के 15 से 30 दिनों के बाद खेत से खरपतवारो को निराई गुड़ाई कर निकाल देना चाहिए एवं रसायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए एट्राजीन 0.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर सक्रिय तत्व को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के बाद एवं अंकुरण से पहले छिडकाव करें।

कीट व रोगों से फसल संरक्षण

बीटल एव ईयर हेड बग : बीटल एव ईयर हेड बग के नियंत्रण के लिए मिथाइल पेराथिआन 2 प्रतिशत या क्यूनॉलफास 1.5 प्रतिशत चूर्ण का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

तना मक्खी : इस किट की गिडार पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में काट देती है जिससे पौधा सुख जाता है नियंत्रण हेतु थिमेट 10 जी. को 15–20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर भुरकाव करें।

सफेद लट : फसल में सफेद लट के प्रकोप की रोकथाम हेतु गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करे व क्यूनॉलफास 5 प्रतिशत कण या कार्बोफ्यूरान 3 प्रतिशत कण का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व कतारों में ऊर देना चाहिए।

कातरा : कातरे की लट फसलो को अत्यधिक नुकसान पहुचाती है इसके नियंत्रण हेतु प्रकाश प्रपंच का खेत में उपयोग कर आकर्षित करके निचे पानी व केरोसिन मिलाकर परात में रख देने से पतंगे इसमें गिरकर नष्ट हो जाते है या मिथाइल पेराथिआन 2 प्रतिशत या क्यूनॉलफास 1.5 प्रतिशत चूर्ण का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

जोगिया (ग्रीन इयेर) या हरित बाली रोग : फसलो को इस रोग से बचाने हेतु बीज को 6.0 ग्राम मेटालेक्सिल 35 एस. डी. से प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करे तथा खेत में खड़ी फसल में जहा जोगिया सक्रमित दिखाई दे तो बुवाई के 21 दिन बाद मेन्कोजेब 2 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से छिडकाव करें।

अरगट : फसलो को इस रोग से बचाने हेतु सिट्टे निकलते समय 2.5 किलो जाईनेब या 1.5–2.0 किलो मेन्कोजेब के तीन तीन दिन के अन्तराल पर 2–3 छिडकाव करने से प्रकोप कम होगा।

कटाई : कटाई के लिए सबसे सर्वोतम समय जब फसल परिपक्व होती है, तब पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और लगभग सूख जाती हैं। दाने कठोर और दृढ़ हो जाते है तथा दाने में नमी की मात्रा 14 प्रतिशत तक शेष रहे उस समय कटाई का समय उपयुक्त माना जाता है।

सोयाबीन में खरपतवार प्रबन्धन कर अधिक उपज लें

धर्मसिंह मीना, भरत लाल मीना, चतुर्भुज मीना, बी.के. पाटीदार एवं सुशीला कलवानियाँ
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज फार्म, कोटा (राज0)

सोयाबीन खरीफ की फसल होने से इसमें विशेष रूप से खरपतवारों का शुरू से ही अधिक प्रकोप रहता है। सोयाबीन के साथ–साथ एवं इससे पूर्व उग कर खरपतवार, भूमि में मौजूद पोषक तत्वों, ऊपर से दिये गये उर्वरकों एवं मृदा की नमी को तेजी से अवशोषित करते हैं और तेजी से वृद्धि करते हैं जिसके कारण सोयाबीन की फसल को समुचित पोषक तत्व व जल प्राप्त नही हो पाता है। फलस्वरूप, फसल की वृद्धि धीमी होती है एवं उपज में भारी कमी हो जाती है। खरपतवारों से होने वाले नुकसान को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते हैं जैसा कि कीड़ों एवं बीमारियों के नुकसान को देखा जा सकता है। यही कारण है कि किसान खरपतवारों के नियंत्रण में देरी कर जाते है।

खरपतवार से हानियाँ

- खरपतवार कीड़ों एवं बीमारियों को आश्रय देते है और बाद में यह कीट एवं बीमारियां फसलों में लग जाती है।
- वर्षा न होने की स्थिति में खरपतवार भूमि की नमी को तेजी से ग्रहण कर ज्यादा पानी वाष्पोत्सर्जन द्वारा उड़ाते है जिससे फसल को पानी कम उपलब्ध होता है। जिससे फसल उत्पादकता घट जाती हैं ।
- अन्ततः ज्यादा खरपतवारों के कारण फसल को काटने में भी परेशानी होती है, जिससे अधिक समय एवं धन खर्च होता है।

अनुसंधानों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि खरपतवार के वजन उनके शुष्क पदार्थ एवं सोयाबीन की प्रति पौधें, कुल उपज में नकारात्मक संबंध होता है। अनियंत्रित खरपतवारों द्वारा सोयाबीन में प्रति पौधें पर फलियां, दानों का भार व आकार, शाखाएं एवं उपज कम (25–85 प्रतिशत) हो जाती है। खरपतवार सोयाबीन की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जो स्थान, प्रजाति, समय, खरपतवारों की सघनता, शस्य, जलवायुवीय स्थितियों एवं प्रबंधन के स्तर पर निर्भर करती है। सोयाबीन की फसल में मुख्य रूप से सांवा, सुरली, कुंडीजरा, रजान, हजारदाना, दुद्धी, दिवालिया, लहसुवा, भंगरा, भोखना, मोग्दया आदि खरपतवार प्रमुख रूप से पाये जाते है।

खरपतवार नियंत्रण का क्रांतिक समय: सोयाबीन में खरपतवारों के प्रभाव का क्रांतिक समय बोने के 3–5 सप्ताह तक है। इस समय सोयाबीन को खरपतवारों से मुक्त रखा जाये तो अधिक उपज व लाभ मिलता है। अतः जहां तक संभव हो सोयाबीन में खरपतवार नियंत्रण बुवाई के 15–30 दिन तक करना जरूरी होता है।

सोयाबीन की खड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण निराई–गुड़ाई द्वारा : बुवाई के साथ ही खरपतवारों का निकलना शुरू हो जाता है। जहां तक हो सके सोयाबीन को शुरू की अवस्था में खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिये। सोयाबीन की फसल में 15–20 तथा 30–40 दिनों की अवस्था पर खुरपी, कुदाली या अन्य कृषि यंत्रों से दो निराई–गुड़ाई अवश्य करें, इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ मृदा में वायु संचार बढ़ने से सोयाबीन की अच्छी वृद्धि एवं उपज में बढ़ोत्तरी होती है, साथ ही नमी संरक्ष्ण भी होता है।

डोरा विधि द्वारा : सोयाबीन की बुवाई यदि 30–45 सेमी. पर की गई है तो कतारों के मध्य 10–15 से.मी. के फाल (ब्लेड) वाले कल्टीवेटर या कुल्फा/डोरा को बैलों/ट्रेक्टर द्वारा चलाकर भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है, परन्तु इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि पौधों की जड़ें न कटे व उखड़ने न पाये।

प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे लगातार वर्षा होने से एवं समय पर मजदूरों के न मिलने के कारण कम समय में अधिक क्षेत्र में हाथों से श्रमिक द्वारा खरपतावार नियंत्रण कठिन हो जाता है, ऐसी स्थितियों में, खरपतवारों का रसायनिक नियंत्रण काफी कारगर साबित होता है। रसायनों द्वारा खरपतवारों के नियंत्रण से लागत भी कम आती है, समय की बचत होती हैं, और सोयाबीन की फसल को हानि नहीं पहुँचती है। खरपतवारनाशक, खरपतवारों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं जिससे उनकी पुनः वृद्धि नही होती है, फूल व बीज नहीं बनते है तथा उनका प्रसारण नहीं हो पाता हैं जिससे अगले वर्ष फसल में खरपतवारों का प्रकोप काफी हद तक कम हो जाता हैं।

रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण : सोयाबीन में खरपतवार नियंत्रण तीन प्रकार से बुवाई के पूर्व, बुवाई के बाद एवं अंकुरण से पहले तथा खड़ी फसल में रसायान प्रयुक्त कर किया जा सकता है।

तालिका 1. बुवाई के पूर्व प्रयुक्त करने वाले रसायन

खरपतवार नाशक का तकनीकी नाम	व्यापारिक नाम	प्रयुक्त सक्रिय तत्व प्रति है.	प्रयुक्त मात्रा प्रति है.	प्रयोग का प्रकार	प्रति टंकी (15 ली.) की मात्रा	विशेष विवरण
फ्लूक्लोरोलिन/ ट्राइफ्लूरेलिन	वासालिन/ ट्रेफलान	–	1 लीटर /है.	बुवाई से पूर्व	42 मि.ली.	सकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु

तालिका 2. बुवाई के बाद एवं अंकुरण होने से पहले प्रयुक्त करने वाले रसायन

खरपतवार नाशक का तकनीकी नाम	व्यापारिक नाम	अनुमोदित सक्रिय तत्व प्रति है.	अनुमोदित उत्पाद मात्रा प्रति है.	प्रयोग का समय	प्रति टंकी (15 ली.) की मात्रा	विशेष विवरण
पेण्डामिथाइलिन 30 प्रतिशत	स्टॉम्प	1.0 कि.ग्रा./है.	3.3 किग्रा/है.	0–3 दिन	–	संकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
पेण्डामिथाइलिन 30 प्रतिशत + इमाजिथापायर 2 ई.सी.	वैलोर	960 ग्राम/है.	3.0 किग्रा/है.	0–3 दिन	–	संकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
सल्फेन्ट्राजोन + क्लोमेजोन 58 प्रतिशत		750 ग्राम/है.	1250 मि.मी./है.	0–3 दिन	–	संकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु

3. अंकुरण होने के पश्चात् खड़ी फसल में प्रयुक्त होने वाले रसायन : प्रयुक्त किये जाने वाले (अंकुरण पश्चात वाले) खरपतवार नाशक चुनिंदा प्रकार के होते हैं, जो खरपतवारों को भिन्न–भिन्न रसायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते हैं तथा फसल को नुकसान नही पहुँचाते है। चूंकि यह खरपतवारनाशक सोयाबीन की खड़ी फसल में प्रयोग किये जाते है, अतः इनके प्रयोग में कुछ विशेष सावधानियां रखनी चाहिये। जैसे विशिष्ट खरपतवारों के लिए विशिष्ट खरपतवारनाशक (तालिका–1) की सही मात्रा, सही समय, सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर कभी–कभी प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है।

तालिका : 3 सोयाबीन की खड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशक (रसायन) तथा उनका विवरण

खरपतवार नाशक का तकनीकी नाम	व्यापारिक नाम	अनुमोदित सक्रिय तत्व प्रति है.	अनुमोदित उत्पाद मात्रा प्रति है.	प्रयोग का समय	प्रति टंकी (15 ली.) की मात्रा	विशेष विवरण
क्यूजालोफोप ईथाइल 5%ई.सी.	टरगा सुपर	50 ग्राम/है.	1 लीटर/है.	बुवाई पश्चात 12–20 दिन बाद	42 मि.ली.	सकरी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु (सांवा)
क्लोरीम्यूरान ईथाइल 25% डब्लयू.पी.	क्लोबेन क्यूरीन	9.37 ग्राम/है.	37.5 ग्राम/है.	बुवाई पश्चात 12–20 दिन बाद	1.56 ग्राम	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु (सुरली, कुडीजरा)
इमाजाथाईपर तरल 10% ई.सी.	परस्यूट	75 ग्राम/है.	750 (मि.ली./ है.)	बुवाई पश्चात 12–20 दिन बाद	32 मि.ली.	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
प्रोपाक्युजाफोप 10% ई.सी.	एजिल	50 ग्राम/है.	500 मि.ली. मि.ली./है.	बुवाई पश्चात 12–20 दिन बाद	21 मि.ली.	सकरी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु (सांवा)
क्लोरीम्यूरान ईथाइल 25% डब्लयू.पी. +फेनोक्साप्रोप–पी–ईथाइल 9% ई.सी.	क्लोबेन क्यूरीन +व्हिप सुपर	6 ग्राम/है.+ 50 ग्राम/है.	24 ग्राम/है. +555 मिली/है.	बुवाई पश्चात 12–20 दिन बाद	1 ग्राम+ 23 मि.ली.	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
क्लोरीम्यूरान ईथाइल 25% डब्लयू.पी.+ क्यूजालोफोप ईथाइल 5% ई.सी.	क्लोबेन क्यूरीन+ टरगा सुपर	6 ग्राम/है.+ 37.5 ग्राम/है.	24 ग्राम/है. +750 मिली/है.	बुवाई पश्चात 12–20 दिन बाद	1 ग्राम+ 32 मि.ली.	सकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
सोडियम एसिफ्लोरफेन+ 16.5% क्लोडिनाफोप प्रोपार्जिल 8%	आईरिस	165 + 80 ग्राम	01 किलोग्राम /है.	बुवाई के 20–25 दिन बाद	30 एम.एल.	संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
प्रोपक्यूजाफॉप 25% + इमिजाथापायर 3.75%	साकेत	रेडिमिक्स	02 किलोग्राम/है.	बुवाई के 20–25 दिन बाद	60 एम.एल.	संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु

सरफेक्टेंट का प्रयोग अवश्य करें : खरीफ के मौसम में खरपतवारों के नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशकों का छिड़काव करते–करते या 2–3 घंटे बाद बारिश भी आ जाती है और छिड़काव किये गये खरपतवारनाशक की काफी मात्रा पत्तियों से छिटक कर नीचे गिर जाती है और आशातीत परिणाम नही मिलते है। खरीफ में इन सभी से बचने के लिए दवाई चिपकाने व फैलाने वाला पदार्थ 'सरफेक्टेंट' 0.5% यानि करीब 500 मि. ली. लीटर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिलाकर स्प्रे करने से खरपतवारनाशक, खरपतवारों की सम्पूर्ण पत्तियों पर फैलकर चिपक जाते हैं जिससे यदि 2–3 घंटे बाद बारिश आ भी जाती है तो दवाई का नुकसान काफी कम होता है। अत: सोयाबीन में खरपतवारनाशकों के साथ 'सरफेक्टेंट' मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण हो पाता है। स्प्रेयर की टंकी में पहले खरपतवारनाशक मिलाये तथा बाद में सरफेक्टेंट को डालकर स्प्रे करें।

खरपतवारनाशकों के प्रयोग संबंधी सावधानियां

1. रसायन छिड़कने वाले किट/मास्क का प्रयोग करें।
2. फ्लेटपेन/फ्लड जेट नोजल लगाकर छिड़काव करें।,
3. उचित समय पर सही मात्रा का प्रयोग करें।
4. छिड़काव हेतु निर्धारित रसायन मात्रा का पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।
5. वायु के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें ताकि रसायन शरीर पर न गिरे।
6. छिड़काव के समय बिड़ी, सिगरेट, तम्बाकू या अन्य चीज न खायें व खाली पेट स्प्रे न करें।
7. छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से करें।
8. छिड़काव पश्चात स्प्रेयर को अच्छी तरह साफ करके रखें।
9. रसायन के डिब्बों को तोड़कर, भूमि में गहरा गाढ़ देवें।
10. यदि हो सके तो छिड़काव रसायन की खरीद रसीद, अन्य जानकारियां जैसे नाम आदि कागज या डायरी में नोट करें।
11. पूर्णरूप से खाली पेट स्प्रे न करें एवं हो सकें तो एक साथी जरूर साथ ले जावें।
12. रसायनों को न सूंघे, न चखें और न ही स्पर्श करें अन्यथा जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
13. नींदानाशकों को लकड़ी की सहायता से घोलें और स्प्रे करने वाले के शरीर पर किसी प्रकार का घाव आदि न हो।
14. छिड़काव पश्चात शरीर व कपड़ों को साबुन से अच्छी तरह साफ करें।
15. खरपतवारनाशक छिड़कते समय या बाद में किसी प्रकार का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव हो तो तुरंत पास के अस्पताल में डॉक्टर को दिखायें।

यद्यपि खरपतवार फसल को बहुत अधिक हानि पहुंचाते है। अत: इनका प्रबन्धन करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। खरपतवार से फसल में 25-85 प्रतिशत तक हानि होती है। उचित प्रकार के रसायनों का प्रयोग कर खरपतवार का नियंत्रण कर पैदावार में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

❋❋❋

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	**जून**	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	**सितम्बर**	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, फसल विविधीकरण
3	**दिसम्बर**	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खीपालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	**मार्च**	जायद खेती, उन्नत कृषि उपकरण, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

फसलों में जल का महत्तव, जल उपयोग दक्षता एवं जल उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

बलदेव राम, अर्जून सिंह जाट, राकेश कुमार बैरवा, जगदीश प्रसाद तेतरवाल,
राम स्वरूप नारोलिया, हरफूल मीणा, इन्द्र नारायण माथुर, प्रताप सिंह एवं राजेन्द्र कुमार यादव
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा–324 001 (राजस्थान)

भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का पचास्वां हिस्सा है परन्तु मानव जनसंख्या का सातवां एवं पशुधन का पांचवां हिस्सा है। इसके साथ–साथ खेती योग्य क्षेत्रफल विश्व का दसवां एवं जल संसाधन पचिस्वां हिस्सा है। तीव्र गति से देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन एवं जल की उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष लगातार घट रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण असामयिक गतिविधियों के कारण देश के एक हिस्से में सूखा एवं दूसरे हिस्से में बाढ़ की समस्या बनी रहती है। वर्तमान परिपेक्ष्य में जल का मानव जीवन, पशुधन एवं कृषि के साथ–साथ औधोगिक एवं ऊर्जा के क्षेत्र में बहुत महत्व है अतः जल का समुचित उपयोग करना नितांत आवश्यक है। यदि समय रहते हुये मनुष्य के द्वारा जल का संचय एवं समुचित उपयोग नही किया गया तो आगामी वर्षो में भयंकर जल संकट पैदा होने पर मानव एवं पशुधन की भंयकर त्रासदी झेलनी पड़ सकती है। विगत् वर्षो से देखने में आया है कि मनुष्य एवं उनकी क्रियाकलाप ही जल संकट का बहुत बड़ा कारण है जैसे निरन्तर जनसंख्या में वृद्धि, वृक्षों की अन्धाधुंध कटाई, कम वर्षा का होना, बढता शहरीकरण, बढता औद्योगिकीकरण तथा मनुष्य की विलासिता एवं आधुनिकतावादी के साथ–साथ स्वार्थी प्रवृत्ति तथा जल संरक्षण के प्रति संवेदनहीनता, भूजल पर बढती निर्भरता एंव अत्यधिक दोहन, परम्परागत जल सग्रहण तकनीक की उपेक्षा एवं कृषि में जल का बढता उपयोग इत्यादि। विगत् वर्षो में जल की उपलब्धता देखने से पता चलता है कि वर्ष 1951 में जल की उपलब्धता 5600 क्यूबीक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से लगातार घट रही है एवं वर्ष 2001 में 1958 क्यूबीक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रही परन्तु आगामी वर्षो में 2025 एवं 2050 तक जल की उपलब्धता मानक तनाव स्तर 1700 क्यूबीक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से भी कम कमशः 1600 एवं 1400 क्यूबीक मीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रहने की संभावना है। जल का सबसे अधिक उपयोग 63 प्रतिशत कृषि में, 3.3 प्रतिशत घरेलू कार्य के लिये, 3.0 प्रतिशत औधोगिक, 2.7 प्रतिशत ऊर्जा एवं 3.0 प्रतिशत अन्य कार्यो हेतु किया जाता है। वर्तमान एवं भविष्य में विभिन्न क्षेत्रों (सेक्टर्स) के अन्तर्गत बढ़ती हुई जल की मांग (बिलियन क्यूबीक मीटर) का आकंलन तालिका 1 में दर्शाया गया है।

सिंचाई दक्षता: इसे स्रोत से लिए गए पानी की मात्रा से विभाजित रूट जोन में जोड़े गए पानी की शुद्ध मात्रा के रूप में संदर्भित किया जाता है। रूट जोन में जोड़े गए पानी की शुद्ध मात्रा और स्रोत से निकाली गई राशि के बीच अंतर फसल के लिए सीपेज और वाष्पीकरणीय नुकसान के साथ–साथ रूट जोन और खेत से अपवाह से परे गहरी परावर्तन हानि का प्रतिनिधित्व करता है।

दक्षता– दक्षता को इनपुट पर आउटपुट के आयाम अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है

$$\text{दक्षता} = \frac{\text{प्रक्रिया से आउटपुट}}{\text{प्रक्रिया के लिए इनपुट}} \times 100$$

तालिका 1: विभिन्न क्षेत्रों (सेक्टरर्स) में वर्तमान एवं अनुमानित भविष्य की जल उपयोग की वार्षिक मांग (बिलियन क्यूबीक मीटर)

विभिन्न क्षेत्रों (सेक्टर्स) में जल उपयोग	राष्ट्रीय समेकित जल संसाधन विकास कमीशन			जल संसाधन मंत्रालय की स्टेंड़िग उप–समिति		
	वर्ष			वर्ष		
	2010	**2025**	**2050**	**2010**	**2025**	**2050**
सिंचाई	557	611	807	688	910	1072
घरेलू	43	62	111	56	73	102
औधोगिक	37	67	81	12	23	63
अन्य	73	103	181	57	87	210
कुल	**710**	**843**	**1180**	**813**	**1093**	**1447**

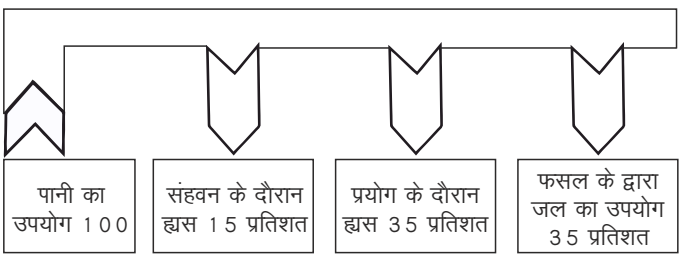

तालिका 2: विभिन्न सिंचाई विधियों के द्वारा सिंचाई दक्षता (प्रतिशत)

सिंचाई दक्षता (प्रतिशत)	विभिन्न सिंचाई की विधियां		
	सतह	फव्वारा स्प्रिंकलर	बूंद–बूंद
आपूर्ति दक्षता	40–50 (नहरें), 60–70 (कुऐं)	100	100
उपयोग दक्षता	60–70	70–80	90
सतह नमी जल का वाष्पोत्सर्जन	30–40	30–40	20–25
संपूर्ण दक्षता	**30–35**	**50–60**	**80–90**

जल उपयोग दक्षता एवं जल उत्पादकता : उत्पादकता किसी भी अच्छे या सेवा की एक इकाई का उत्पादन करने के लिए खर्च किए जाने वाले किसी भी संसाधन की मात्रा को मापती है।

जल उपयोग दक्षता: फसल अवधि के दौरान फसल द्वारा लिए जाने वाले पानी की मात्रा को मापती है ताकि उत्पादन की एक इकाई मात्रा यानी फसल की उपज का उत्पादन किया जा सके। उत्पादित फसल की उपज के प्रति जल संसाधन इनपुट की आवश्यकता कम होती है, दक्षता उसकी उतनी ही अधिक होगी।

जल उपयोग दक्षता: फसल द्वारा उपयोग किए जाने वाले पानी का मूल्यांकन के संदर्भ में किया जाता है। इसे तीन प्रकार से परिभाषित करते है।

1. फसल जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.): यह वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन (ET) में फसल द्वारा उपयोग किए जाने वाले पानी की मात्रा के लिए फसल की उपज (वाई) का अनुपात है

$$\text{फसल जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.)} = \frac{\text{फसल उपज (Y)}}{\text{वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन (ET)}} \times 100$$

2. खेत जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.): यह खेत में इस्तेमाल होने वाले कुल पानी की मात्रा (ET+DP) के अनुपात में फसल की उपज (वाई) का अनुपात है

$$\text{खेत जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.)} = \frac{\text{फसल उपज (Y)}}{\text{खेत में इस्तेमाल होने वाले कुल पानी की मात्रा (EP+DP)}} \times 100$$

तालिका 3: विभिन्न फसलों में जल उपयोग दक्षता

फसल	जल मांग (मि.मी.)	उपज (कि.ग्रा./ हे.)	जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.)
धान	1200	4500	3.7
ज्वार	500	4500	9.0
बाजरा	500	4000	8.0
मक्का	625	5000	8.0
मूंगफली	506	4616	9.2
गेंहूँ	280	3534	12.6
फिंगर मिलेट	310	4137	13.7

3. दैहिक जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.): यह वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन (ET) में खोए पानी के लिए शुष्क भार संचय का अनुपात है

$$\text{दैहिक जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति है. मिमी.)} = \frac{\text{शुष्क भार का वजन (DMA)}}{\text{वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन (ET) से पानी का ह्रास}} \times 100$$

जल उत्पादकता: पानी की मात्रा या पानी के उपयोग का मूल्य से मात्रा या मूल्य की फसल या भोजन प्राप्त होता है उसे जल उत्पादकता कहते है। इसे पौधों, खेत एवं नदी बेसिन पर अलग–अलग तरीके से प्रयोग या उपयोग किया जाता है जैसे किग्रा. प्रति क्यूबीक मीटर पानी या रूपये प्रति क्यूबीक मीटर पानी। किसान के नजरीये–प्रति सिंचाई जल से अधिक उत्पादन लेना जबकि नदी बेसिन के अनुसार–प्रति यूनिट पानी संसाधन से अधिक मूल्य या लाभ प्राप्त करना। विभिन्न फसलों में जल उत्पादकता तालिका 4 में वर्णित की गयी है।

तालिका 4: मक्का/सोयाबीन फसल प्रणाली में तुलनात्मक जल उत्पादकता

फसल प्रणाली	सिंचाई जल उपयोग (मिमी.)	उपज (कि.ग्रा./ हे.)
सोयाबीन–गेंहूँ–मूंग	840	1.36
सोयाबीन–धनियां–मूंग	780	1.68
सोयाबीन–मैथी–मूंग	780	1.36
सोयाबीन–मटर–सूरजमुखी	780	3.09
सोयाबीन–आलू–सूरजमुखी	840	2.56
मक्का–गेंहूँ–मूंग	840	1.28
मक्का–धनियां–मूंग	780	1.57
मक्का–मैथी–मूंग	780	1.24
मक्का–मटर–सूरजमुखी	780	2.39
मक्का–आलू–सूरजमुखी	840	2.39

स्त्रोंतः राना इत्यादि (2013)

जल उत्पादकता बढ़ाने के तरीके

प्रकृति में उपलब्ध सतही एवं भूमिगत जल का अधिकतम उपयोग करने के लिये मृदा की सतह से पानी का वाष्पीकरण के द्वारा ह्रास तथा खेतों से बेकार बहते पानी को रोककर मृदा में संचय उन्नत तकनीकों के द्वारा करके प्रति यूनिट जल उपयोग के द्वारा प्रति इकाई उपज को बढ़ाकर जल की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। खेतों में जल संचय का केवल फसल की सिचाई हेतु जल मागं की कान्तिक अवस्थाओं, नवोन्मेशी सिंचाई की विधियों के द्वारा जैसे जल संहवन एचडीपीई पाईप लाईन के द्वारा जल को खेत तक पहुंचाना तथा फव्वारा एवं बूंद–बूंद विधि से सिंचाई करके जल उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। विस्तृत विवरण निम्न वर्णित तालिका 5, 6 एवं 7 में दी गई है।

तालिका 5: जल उत्पादकता बढ़ाने के विभिन्न तरीके

क्र.सं.	विभिन्न तरीके	पौध के स्तर पर	खेत के स्तर पर	प्रणाली या बेसिन के स्तर पर
1.	प्रति यूनिट जल वाष्पोर्त्सजन से अधिक बाजारयुक्त उपज	√	√	√
2.	बेकार बहते पानी को रोकना (निकास, सीपेज व निक्षालन) तथा अनउत्पादक ह्यास (मृदा व जल से वाष्पीकरण एवं खरपतवार से वाष्पोर्त्सजन	√	√	√
3.	असिंचित पानी का अन्दर बहाव को बढ़ाना (वर्षात्, जल का संचय, सीमान्त गुणवत्ता का पानी, जल प्लावन/जल निकास	-	√	√
4.	संचय जल का दक्षता के साथ प्रभावी उपयोग बढ़ाना	-	√	√
5.	अभी तक प्रतिबद् प्रवाह का उपयोग नही	-	-	√
6.	रिएलोकेटिंग एवं सह उपयोग के बीच पानी (बहुउपयोगी) का प्रबंधन	-	√	√

तालिका 6: एचड़ीपीई पाईप लाईन से सहरिया क्षेत्र में सिंचाई विधि से गेंहू फसल की उपज एवं जल उत्पादकता पर प्रभाव (औसत 4 वर्ष)

क्रियायें	प्रदर्शन प्रक्षेत्र	नियंत्रित प्रक्षेत्र
सिफारिश सिंचाई की विधियां	गरड़ा नदी से पानी ईजन से लिफ्ट करके कांतिक अवस्था पर सिंचाई	सतही सिंचाई
उपज (किग्रा. प्रति है.)	4380	3900
बढ़ोत्तरी (प्रतिशत)	12.30	-
शुद्ध आय (रू प्रति है.)	60226	38598
जल दक्षता (रू प्रति क्यूबीक मीटर)	22.58	13.78

तालिका 7: स्प्रिंकलर विधि से सहरिया क्षेत्र में गेंहू फसल की उपज एवं जल उत्पादकता पर प्रभाव (औसत 5 वर्ष)

क्रियायें	प्रदर्शन प्रक्षेत्र	नियंत्रित प्रक्षेत्र
सिफारिश सिंचाई की विधियां	स्प्रिंकलर से सिंचाई	सतही सिंचाई
उपज (किग्रा. प्रति है.)	4660	4250
बढ़ोत्तरी (प्रतिशत)	9.65	-
शुद्ध आय (रू प्रति है.)	65688	51893
जल दक्षता (रू प्रति क्यूबीक मीटर)	23.46	18.83

विभिन्न सिंचाई विधियों का कपास फसल की उपज एवं जल उत्पादकता पर प्रभाव

बूंद बूंद सिंचाई विधि से 21 प्रतिशत कपास + रेशा उपज, कून्ड़ विधि एवं 30 प्रतिशत फव्वारा विधि की तुलना में अधिक प्राप्त हुयी। जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा./है./मि.मी.) इस प्रकार पाई गई है।

- बूंद बूंद सिंचाई विधि – 4.87
- फव्वारा विधि – 3.87
- कून्ड़ विधि – 2.36

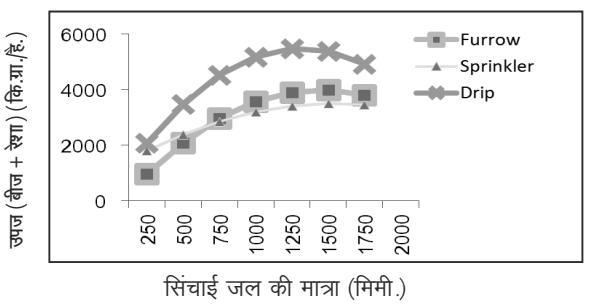

वर्षा आधारित परिस्थितियों में जल उत्पादकता

वर्षा के 100 प्रतिशत पानी का न तो भूमि में संचय हो पाता है नही पौधे उपयोग कर पाते है। अतः वर्षा के पानी का बहुत बड़ा हिस्सा बेकार चला जाता है उदाहरणतया, निक्षालन में 10–30 प्रतिशत, सतही बहाव 10–25 प्रतिशत, वाष्पीकरण 30–50 प्रतिशत एवं वाष्पोर्त्सजन 15–30 प्रतिशत तक होता है। इसलिए वर्षा के पानी का जल उत्पादकता बढ़ाने हेतु सतह से पानी का ह्यास वाष्पीकरण के रूप में होने वाले नुकसान जो कि अनुउत्पादक को घटाना है तथा पौधों के द्वारा पानी का ह्यास वाष्पोर्त्सजन के रूप में होना बहुत जरूरी है जो कि उत्पादकता में सहायक को बढ़ाना होगा एवं सतही स्तर से जल बहाव को रोककर जमीन में संचय करके पौधों की जड़ों को उपलब्ध हो सके और निक्षालन के रूप में होने वाले पानी के ह्यास को भूमि में रोककर उसको पर्याप्त मात्रा में पौधों को उपलब्ध करवाने से वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल का अधिकतम उत्पाादन लेकर जल की उत्पादकता बढ़ानी होगी।

सिंचित परिस्थितियों में जल उत्पादकता : सिंचित परिस्थितियों में जल उत्पादकता को बढ़ाने के लिये नीचे वर्णित फ्लोचार्ट को अपनाकर वास्तविक रूप से फसल उत्पादन के साथ–साथ जल उत्पादकता भी बढ़ा सकेगें।

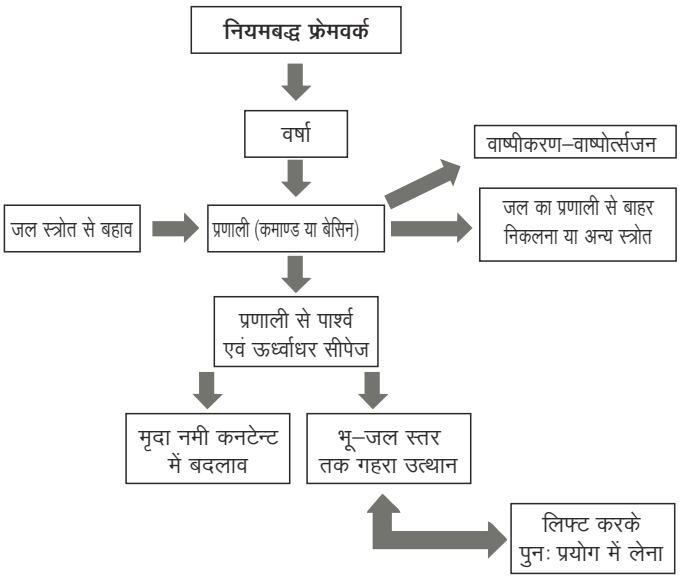

जल उपयोग दक्षता को प्रभावित करने वाले कारक एवं प्रबंधन

क. जलवायु कारक: मौसम फसल की उपज और फसल वाष्पीकरण दोनों को प्रभावित करता है।

- **तापमान:** आम तौर पर वाष्पोत्सर्जन और शुष्क पदार्थ दोनों को प्रभावित करते हैं, दोनों में से किसके अनुसार जल उपयोग दक्षता बढ़ेगा या घटेगा।
- **सौर विकिरण की मात्रा:** प्रकाश संश्लेषण की दर और संभावित उपज का निर्धारण करती है।
- **सापेक्ष आर्द्रता:** वातावरण में जितनी कम सापेक्ष आद्रता होगी, वाष्पोर्त्सजन उतना ही अधिक होगा। इसलिए, वातावरण में कम सापेक्ष आर्द्रता शुष्क पदार्थ के उत्पादन में किसी भी इसी वृद्धि के बिना वाष्पोत्सर्जन को बढ़ाती है और जल उपयोग दक्षता को कम कर देगी।
- **उच्च वायु वेग:** शुष्क पदार्थ के उत्पादन में किसी भी समवर्ती वृद्धि के बिना वाष्पोत्सर्जन को बढ़ाता है इसलिए जल उपयोग दक्षता को कम करता है।

ख. आनुवंशिकी कारक: फसलों को भिन्न–भिन्न मौसम में उगाई जाती है अतः फसल एवं उनकी उन्नत किस्मों की जल मांग अलग–अलग होती है।

- **फसल प्रजाति:** फसल वृद्धि और उपज उनके आनुवंशिक संविधान और पर्यावरणीय परिस्थितियों के बीच बातचीत का एक परिणाम है, जिसमें वे बढ़ते है। पौधे की प्रजातियां में व्यापक रूप से उत्पादकता भिन्न होती हैं यानी, फसल की उपज और पानी का उपयोग यानी वाष्पोत्सर्जन पर निर्भर करती है। सी 4 पौधों की प्रजातियों जैसे मक्का, शर्बत, गन्ना, बाजरा, फिंगर मिलर आदि का जल उपयोग दक्षता अधिक (3.14 से 3.44 मिलीग्राम सूखा वजन प्रति ग्राम पानी) है। सी 3 प्रजातियों जैसे दालें, तिलहन फसलें, गेहूं, जौ, जई आदि का जल उपयोग दक्षता कम (1.49 से 1.5 मिलीग्राम मिलीग्राम सूखा वजन प्रति ग्राम) है।
- **फसल किस्में:** फसल की किस्में भी जल उपयोग दक्षता में भिन्न होती हैं। बौने प्रकार के पौधे, जल और उर्वरक, कीट और रोग प्रतिरोध और उच्च फसल सूचकांक के प्रति उत्तरदायी उच्च उपज वाली किस्मों, संकर फसलों, जीएम फसलों आदि का जल उपयोग दक्षता ज्यादा होती है। पारंपरिक किस्मों जिनकी विशेषता अधिक वनस्पतिक विकास, निम्न सूचकांक, आड़ी गिरना, कीट और रोगों के लिए अतिसंवेदनशील होती है।

ग. सस्य प्रबंधन कारक

- **बुवाई का समय:** समय पर बुवाई से इष्टतम तापमान, मिट्टी की नमी की उपलब्धता और अन्य मृदा की भौतिक स्थिति सुनिश्चित होती है, जिससे प्रचलित खरपतवार के साथ प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता अधिक होती है।
- **बुवाई की गहराई:** बुवाई की इष्टतम गहराई अंकुर उभरने, ताकत और अंततः फसल की उपज को प्रभावित करती है, इसलिए जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है।
- **बुवाई की दिशा:** फसल पंक्तियों के उत्तर दक्षिण पंक्ति उन्मुखीकरण घटना सौर विकिरण के अवरोधन और उपयोग को प्रभावित करता है जो बदले में फसल की उपज को प्रभावित करता है और पंक्ति पैटर्न के पूर्व पश्चिम दिशा की तुलना में जल उपयोग दक्षता में सुधार करता है।
- **पौधों की संख्या:** उपयुक्त प्लांट जनसंख्या वृद्धि संसाधनों जैसे प्रकाश, पोषक तत्वों, पानी, कार्बन ड़ाई ऑक्साइड़ के लिए किसी भी प्रतियोगिता के बिना फसल को एक समान और तेजी से विकास को बढ़ावा देता है इसलिए जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है।
- **उर्वरक:** पर्याप्त मिट्टी के पानी की उपलब्धता के तहत कम पोषण से पीड़ित फसलों का निषेचन फसल की उपज में काफी वृद्धि करता है, इससे फसल के वाष्पीकरण में अपेक्षाकृत कम वृद्धि होती है, इसलिए उल्लेखनीय रूप से जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है।
- **कीट एवं बिमारियां:** कीट और बीमारियाँ फसल की पैदावार को कम करने के साथ–साथ भिन्नता की तीव्रता के आधार पर अलग–अलग डिग्री तक कम हो जाती हैं, क्योंकि फसल की वाष्पोर्त्सजन या पानी की आवश्यकता उन मामलों में महत्वपूर्ण स्तर तक नहीं बदलेगी, जब कि पौधों की समय से पहले मृत्यु हो जाती है।
- **सिंचाई विधि:** सतही सिंचाई विधियों अर्थात, कून्ड़ विधि, बॉर्डर स्ट्रिप, चेक बेसिन इत्यादि की तुलना में खेतों में पानी का उपयोग दक्षता सामान्य तौर पर हेड स्प्रिंकलर, माइक्रोप्रिंकलर और सिंचाई की ड्रिप विधियों के साथ अधिक होती है।
- **वाष्पोर्त्सजन नियंत्रण के उपाय:** मल्व, एंटी–ट्रांसपिरेंट्स, शेल्टरबेल्ट और खरपतवारों के उन्मूलन आदि का उपयोग फसल की उपज में किसी भी कमी के बिना मिट्टी के वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन के संदर्भ में फसल के पानी के नुकसान को कम करता है, इसलिए उल्लेखनीय रूप से सुधार होगा।

ध्यान देने वाली विशेष बिन्दु

- वर्षा जल को संगहरण करना
- जल उपलब्धता के अनुसार फसलों का चयन करना
- कम मांग वाली फसलों की किस्मों का प्रयोग करना
- कमांड़ क्षेत्र में उचित सस्य तकनीक विधियों से फसलों की बुवाई करना
- जल मांग के अनुसार उन्नत विधियों से सिंचाई करना

❋❋❋

मक्का की फसल के रोग एवं उनका समन्वित प्रबन्धन

आर. एन. शर्मा, राहुल कुमार एवं वी. एस. मीना
कृषि महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान

भारत में उगाई जाने वाली खाद्यान्न फसलों में मक्का का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत मे इसकी खेती 8.71 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। 2471 किलो/है. औसत उत्पादकता के साथ कुल 21.57 मिलियन टन मक्का का उत्पादन होता है। मक्का की यह औसत उत्पादकता अपेक्षा से काफी कम है जिसका प्रमुख कारण इसमें लगने वाले रोगों से होने वाला नुकसान है। मक्का की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले प्रमुख रोग एवं उनका समन्वित प्रबन्धन इस प्रकार से है।

1. मृदु रोमिल आसिता/तुलासिता (Downey mildew): यह रोग *पेरोनोस्कलेरोस्पोरा सोरघी* कवक द्वारा फैलता है। इस रोग के लक्षण प्रायः बुवाई के 15–20 दिन के बाद ही दिखाई देने लग जाते हैं। प्रभावित पौधे हल्के हरे से पीले पड़ने लग जाते हैं जिनके नीचे की 2–3 पत्तियां स्वस्थ रहती हैं तथा ऊपर की पत्तियों पर पीली धारियां दिखाई देती हैं। धीरे–धीरे ऊपर की सभी पत्तियां रोग ग्रसित हो जाती हैं। रोग ग्रसित पत्तियों की निचली सतह पर रोग जनक कवक के कवकजाल की बढवार दिखाई देती है। रोगी पौधे छोटे एवं कमजोर रह जाते हैं। ऐसे रोग ग्रसित पौधे 40–50 दिन की अवस्था में ही सूखकर मर जाते हैं।

प्रबन्धन

- रोग रोधी/सहनशील किस्मों जैसे माही धवल, माही कंचन, अरावली मक्का, प्रताप मक्का–3, प्रताप मक्का–5, गंगा–11 आदि को ही बुवाई के काम में लें।
- ग्रीष्म–ऋतु में खेतों की गहरी जुताई करें।
- बुवाई जून माह में मानसून की पहली वर्षा आते ही कर देनी चाहिये। जहां पर सिंचाई की सुविधा हो वहां इसकी बुवाई 15 से 20 जून के मध्य अवश्य कर दें।
- मक्का के खेत व उसके आस पास लापलिया घास *(हेटेरोपोगान कोनटोरटस व हे. मेलेनोकारपस)* को नहीं पनपने दें।
- जिन क्षेत्रों में रोग का प्रकोप ज्यादा रहता हो वहां बीज दर 10–15 प्रतिशत ज्यादा रखें ताकि बाद में रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर सकें।
- बीज को मेटालेक्सिल (एप्रोन 35 एस.डी.) के साथ 4 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- खड़ी फसल में बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर मेटालेक्सिल + मैन्कोजेब (रिड़ोमिल एम.जेड़. 72 डब्ल्यू.पी.) का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

2. तना विगलन (Stem rot) : इस रोग का मुख्य कारक *फ्यूजेरियम वर्टिसिलोईड्स* फफूंद है जो मिट्टी में रहती है। फसल में मांजर आने की अवस्था के आस पास पौधे खड़े–खड़े अचानक मुरझाकर सूखने लगते हैं। रोग ग्रसित पौधों के तनों का रंग भूमि की सतह के पास से भूरा हो जाता है जो धीरे–धीरे सूखकर सिकुड़ जाता है। यदि रोग ग्रसित भाग को चीरकर देखा जाये तो उसमें गहरे भूरे रंग के ऊतक दिखाई देते हैं जिन पर रोगजनक फफूंद की बढवार दिखाई देती है।

प्रबन्धन

- ग्रीष्म–ऋतु में खेत की गहरी जुताई करें एवं फसल चक्र अपनायें।
- खेत में पानी के निकास की उचित व्यवस्था करें।
- रोगरोधी/सहनशील किस्मों जैसे अरावली मक्का, प्रताप मक्का–3, प्रताप मक्का–5 आदि को ही बुवाई के काम में लें।
- बीज को ट्राइकोडर्मा पाऊडर के साथ 10 ग्राम/किलो बीज की दर से अथवा कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. (बाविस्टिन) के साथ 4 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- मांजर आने 10 दिन पूर्व यदि कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) का 0.2 प्रतिशत का छिडकाव किया जाये तो लाभदायक रहता है।

3. पत्ती धब्बा/झुलसा रोग (Leaf blight) : वर्षा ऋतु में पत्तियों पर कई तरह के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग की उग्रता में ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं। इनमें मुख्य रूप से मेड़िस लीफ ब्लाइट फसल को ज्यादा नुकसान पहुँचाती है जो कि ड्रेसलेरा मेड़िस फफूंद द्वारा होती है। सामान्यतः इस रोग के लक्षण बुवाई के 40–45 दिन के बाद ही दिखाई देते हैं

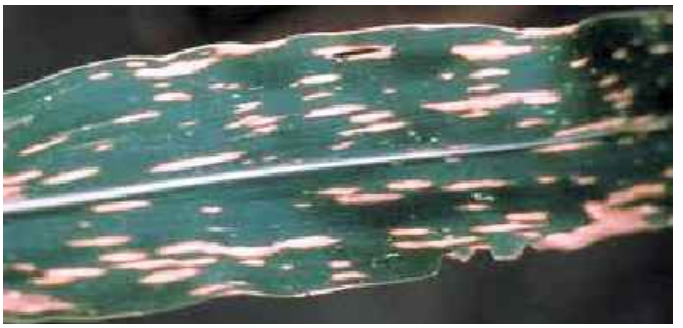

प्रबन्धन

- जिन क्षेत्रों में रोग का प्रकोप ज्यादा रहता हो वहां फसल की बुवाई में देरी न करके सही समय पर करें।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे माही धवल, माही कंचन, गंगा–2, गंगा–11 आदि को ही बुवाई के काम में लें।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैन्कोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से फसल पर छिड़काव करें आवश्यक होने पर 10–15 दिन बाद छिड़काव को दोहरावें।
- पौध दूरी, खाद, बीज को सिफारिश के अनुसार ही प्रयोग करें।

4. पत्ती मुड़न एवं पर्ण आच्छद झुलसा रोग (Banded leaf and sheath blight) : यह रोग *राइजोक्टोनिया सोलेनी* नामक कवक की वजह से होता है। फसल की 40–50 दिन की अवस्था पर इस रोग का प्रकोप शुरू हो जाता है। रोग ग्रसित पत्तियों एवं पर्ण आच्छद पर सफेद भूरे धब्बे दिखाई देते हैं जिन पर भूरे से गहरे रंग की खड़ी धारि यां बनी होती हैं। निचली पत्तियों एवं पर्ण आच्छद (1–2) पर के धब्बों पर संकेद्रित धारियां दिखाई देती हैं जो कि इस रोग की विशिष्ट पहचान है। ऐसे पौधों पर लगे हुऐ भुट्टे पकने से पहले ही पूरी तरह से सूख जाते हैं।

प्रबन्धन

- रोगरोधी/सहनशील किस्मों जैसे प्रताप कंचन–2, प्रताप मक्का–3, प्रताप मक्का–5, शक्तिमान–1, शक्तिमान–3 आदि को ही बुवाई के काम में लें।
- बीज को कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. के साथ 2 ग्राम/किलो की दर से उपचारित करके बोयें।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. का 1 ग्राम/लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

5. सूत्रकृमि (Nematodes) : मक्का में सामान्यतः कोष युक्त सूत्रकृमि *(हेटेरोड़ेरा जी)* का प्रकोप होता है। रोग ग्रसित पौधे बौने एवं पीलापन लिए हुए दिखाई देते हैं। ऐसे पौधों पर भुट्टे छोटे लगते हैं। प्रभावित पौधों की जड़ें गुच्छेदार हो जाती हैं जिन पर सफेद मोतीनुमा मादा पायी जाती है।

प्रबन्धन

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें एवं फसल चक्र अपनायें।
- प्रतिरोधी किस्मों जैसे एच.क्यू.पी.एम.–1 व चारे के लिए प्रताप मक्का चरी–6 आदि को ही बुवाई के काम में लें।
- बुवाई से पूर्व नीम या करंज की खल 5 क्विंटल/है. या कार्बोफ्यूरान 3जी 25 किलो/है. की दर से भूमि में मिलावें।
- अन्तराशस्य के रूप में मक्का की दो कतारों के बाद सोयाबीन या तिल की दो कतारें 30 से.मी. की दूरी पर लगाायें।
- बुवाई के बाद प्रथम निराई गुड़ाई के समय मृदा उपचार के रूप में फोरेट 10 जी या कार्बोफ्यूरान 3जी कण 20–25 किलो/है. की दर से प्रयोग करें।

❋❋❋

कम लागत वाले जैव उर्वरकों का बीजोपचार कर फसलोत्पादन के साथ आमदनी बढाये

अर्जुन सिंह जाट एवं बलदेव राम
कृषि विज्ञान केन्द्र, मौलासर, नागौर–II एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा

जैव उर्वरक क्या है?

वह उत्पाद जिनमें जीवित सुक्ष्म जीवाणुओं की संख्या पर्याप्त रूप से ठोस एवं तरल रूप में पायी जाती है, जो कि नत्रजन स्थिरीकरण, पोषक तत्वों की उपलब्धता को सुनिश्चित कर भूमि एवं फसलों की उत्पादकता बढ़ाती है। जीवित कोशिकोओं की संख्या 5 x 107 कोशिका/ग्राम ठोस रूप में, 108 कोशिका/मिली द्रव्य रूप में होती है। भारत जैसे विकासशील देश में नत्रजन की भरपूर मात्रा की आपूर्ति केवल रसायनिक उर्वरकों से कर पाना छोटे और मध्यम श्रेणी के किसानों की क्षमता से परे हैं। अतः फसलों की नत्रजन आवश्यकता की पूर्ति के लिए पूर्णरूपेण रसायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहना तर्क संगत नहीं हैं। आजकल की परिस्थिति में नत्रजनधारी उर्वरकों के साथ–साथ नत्रजन के वैकल्पिक स्त्रोतों का उपयोग न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बल्कि भूमि की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए भी जरूरी है। फसलों द्वारा भूमि से लिए जाने वाले प्राथमिक पोषक तत्वों जैसे नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश में से नत्रजन का सबसे अधिक अवशोषण होता है, क्योंकि इस तत्व की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। इतना ही नहीं बल्कि खेत में डाले गए नत्रजन का 40–50 प्रतिशत ही फसलें उपयोग कर पाती हैं और शेष बचा 55–60 प्रतिशत भाग पानी के साथ बह जाता है या फिर रसायनिक क्रिया के फलस्वरूप गैस रूप में परिवर्तित होकर वायुमंडल में मिल जाता है या भूमि में ही अस्थाई बंधक होकर रह जाता है। अन्य पोषक तत्वों की तुलना में भूमि के अन्दर उपलब्ध नत्रजन की मात्रा सबसे न्यून स्तर की होती है। यदि प्रति किलोग्राम पोषक तत्व की ओर ध्यान दें तो नत्रजन सबसे अधिक कीमती है। अतः नत्रजनधारी उर्वरकों के एक–एक दाने का उपयोग किफायत एवं सावधानी से करना आज की अनिवार्य एवं आवश्यक हो गई है। इसलिए ऐसी स्थिति में खेती की लागत को कम करने के लिए जैव उर्वरकों और सान्द्रिय पदार्थो के एकीकृत/मिले–जुले/संघटित उपयोग की नत्रजन उर्वरक के रूप में करने की अनुशंसा की जा रही है।

फसलोत्पादन हेतु विभिन्न प्रकार के आदानों की आवश्यकता होती है लेकिन अधिकतर आदानों की लागत बहुत अधिक है जबकि विशेषकर कम लागत वाले आदान जैव उर्वरकों का प्रयोग करके अधिक उत्पादन के साथ–साथ अधिक आमदनी प्राप्त कर सकते है। जैव उर्वरक एक सूक्ष्म जीव नमी धारक प्राकृतिक उत्पाद है इनका उपयोग मुख्यतः फसलो में नत्रजन एवं फॉस्फोरस की आंशिक पूर्ति के लिया किया जाता है। यह भूमि के भौतिक एवं जैविक गुणों में सुधार कर उर्वरा शक्ति को भी बढाते है जिसके कारण जैव उर्वरक टिकाऊ खेती का एक महत्तपूर्ण कारक है। जैव उर्वरक विशेषकर सूक्ष्मजीवों का किसी नमी धारक पदार्थ में मिश्रण है। ये सूक्ष्म जीव वायुमण्डल की आणविक नत्रजन जिसका उपयोग पौधे सीधे नहीं कर पाते है, उसे पौधे के लिये सुलभ रुप में परिवर्तित कर सकते है तथा भूमि में विद्यमान फॉस्फोरस तत्व को पौधे के लिये अप्राप्य रुप को सुलभ रुप में बदल कर फसलों को लाभ पहुँचाते हैं। इन्हीं विशेष सूक्ष्म जीवों की निर्धारित मात्रा को किसी नमी धारक धूलीय पदार्थ (चारकोल, लिग्नाइट आदि) में मिला कर जैव उर्वरक तैयार किये जाते है जिन्हें प्रायः कल्चर के नाम से जाना जाता है। इनके उपयोग का भूमि पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि ये भूमि के भौतिक व जैविक गुणों में सुधार कर उसकी उर्वरा शक्ति को बढाने में सहायक होते है। जैविक खेती में इनका महत्व और भी अधिक है। जैव उर्वरकों द्वारा प्रदान किये जाने वाले पोषक तत्वों के अनुसार विभिन्न फसलों में भिन्न–भिन्न जैव उर्वरक लाभकारी पाये गये है। फसलोत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले मुख्य जैव उर्वरक इस प्रकार है।

राइजोबियम जैव उर्वरक

राइजोबियम नामक जीवाणु दलहनी फसलो की जड़ो पर ग्रन्थियों का निर्माण कर, इन गाठों में रहकर वायुमण्डल की नत्रजन का स्थिरीकरण कर फसल को उपलब्ध कराते है अतः अलग–अलग दलहनी फसलो में अलग–अलग जाति के राइजोबियम जीवाणु जड़ो पर गाठों का निमार्ण करते है। इसलिये फसल विशेष के अनुसार ही राइजोबियम कल्चर का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस जैव उर्वरक का प्रयोग विभिन्न दलहनी फसलों जैसें मसूर, मटर, चना, उड़द, मूंगफली, अरहर, राजमा एवं सोयाबीन में किया जा सकता है। वैसे तो विभिन्न दलहनी फसलों की जड़ो पर गाठों का निमार्ण करने वाला राइजोबियम जीवाणु भूमि मे प्राकृतिक रुप से विद्यमान है परन्तु कई स्थानो पर मिट्टी में इनकी प्रर्याप्त संख्या न होने अथवा प्राकृतिक रुप से विद्यमान राइजोबियम जीवाणु की कम सक्रियता एवं नत्रजन स्थिरीकरण क्षमता के कारण, इस जैव उर्वरक का दलहनो में प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है। जिससे प्रर्याप्त मात्रा में जड़ ग्रन्थियों का निमार्ण हो सके। परीक्षणों के आधार पर इस कल्चर के प्रयोग से विभिन्न दलहनी फसलों की उपज में 10–15 प्रतिशत तक की वृद्धि पाई गई है। दलहनी फसलों में राइजोवियम जैव उर्वरक उपयोग का लाभ अगली बोई जाने वाली फसल में भी देखा गया है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक

एजोटोबैक्टर नामक जीवाणु भूमि में स्वतंत्र रुप से रह कर हवा की नत्रजन को भूमि में स्थिर करते है जिसका उपयोग पौधे सुगमता से कर पाते है। इसका प्रयोग विभिन्न धान्य फसलों जैसे गेहू, मक्का, बाजरा, ज्वार, सब्जियों की फसलो जैसे टमाटर, गोभी, बैंगन, आलू, अन्य फसलों जैसे कपास एवं गन्ना में भी किया जाता है। इस जैव उर्वरक के प्रयोग से फसलो को 20–25 कि.ग्रा. उर्वरक नत्रजन के बराबर लाभ प्राप्त होता है एवं उनकी उपज में लगभग 10 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त बीज की जमाव क्षमता में भी वृद्धि देखी गई है एवं पौधो में रोगो का प्रकोप भी कम होता है। परन्तु यह जैव उर्वरक फसलों की सम्पूर्ण नत्रजन तत्व की आपूर्ति कर पाने में सक्षम नही है। अतः अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये शेष नत्रजन का प्रयोग उर्वरको के द्वारा पूर्ति की जा सकती है।

एजोस्पिरिलम जैव उर्वरक

एजोटोबैक्टर की भॉति एजोस्पिरिलम जैव उर्वरक भी भूमि में स्वतंत्र रुप से रहते हुये वायुमण्डलीय नत्रजन को यौगिकीकृत कर फसलों को लाभ पहुँचाते है। इसका प्रयोग भी विभिन्न धान्य फसलो में किया जा सकता है परन्तु मक्का, बाजरा व ज्वार आदि फसलो में लाभ अधिक देखा गया है क्योंकि इन फसलो के साथ इस जीवाणु की सहजता पाई गई है। इस जैव उर्वरक द्वारा फसलो को प्रति हैक्टर 20–30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर नत्रजन उर्वरक के बराबर लाभ मिलता है। इस जैव उर्वरक के प्रयोग से फसलो की उपज में 5 से 10 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई है। इस जैव उर्वरक का प्रयोग धान की फसल में भी किया जा सकता है। रसायनिक नत्रजन उर्वरक के प्रयोग के साथ भी एजोस्पिरिलम जैव उर्वरक उपयोग का लाभ फसल को प्राप्त होता है। यह भी देखा गया है कि एजोस्पिरिलम जैव उर्वरक का प्रयोग करने से जड़ो का विकास अधिक होता है जिससे वे भूमि से पोषक तत्वो को अधिक मात्रा में ग्रहण कर सकती है इससे पौधो को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है।

नील हरित शैवाल

नील हरित शैवालों के जैव उर्वरक का प्रयोग केवल सिंचित धान की फसल में ही किया जा सकता है क्योंकि इन शैवालो की वृद्धि एवं कार्य के लिये जल की अधिक आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न परीक्षणो में नील हरित शैवालो के जैव उर्वरक द्वारा धान की उपज में 10–15 प्रतिशत तक वृद्धि पाई गई है एवं फसल को लगभग 25–30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उर्वरक नत्रजन के बराबर लाभ प्राप्त होता है। नील हरित शैवाल भी वायुमण्डल की नत्रजन को यौगिकृत कर फसल को उपलब्ध कराते है। इसके द्वारा एकत्र की गई नत्रजन शैवालो के सड़ने के पश्चात ही फसल को प्राप्त हो पाती है जिसकी सम्पूर्ण मात्रा का उपयोग इस जैव उर्वरक का प्रयोग की जाने वाली फसल नही कर पाती है तथा भूमि में शेष बची नत्रजन अगली फसल को लाभ पहुचाती है। नत्रजन के अलावा नील हरित शैवाल भूमि में जैवांश की मात्रा में वृद्धि कर भूमि की भौतिक दशा को सुधारने मे भी सहायक होता है एवं साथ ही साथ नील हरित शैवाल भूमि में पादप वृद्धि कारक पदार्थ स्रावित कर फसल को लाभ पहुचाते है।

एजौला

एजौला एक जलीय फर्न है जिसके सहजीवन में एक नील हरित शैवाल (एनाबिना एजौली), वायुमण्डल की नत्रजन का स्थिरीकरण कर पौधो को लाभ पहुचाती है एवं एजौला में शुष्क भार का लगभग 5 प्रतिशत नत्रजन होता है। नील हरित शैवाल की तरह ही एजौला की वृद्धि के लिये भी पानी की अधिक आवश्यकता होती है अतः इसका प्रयोग भी धान की फसल में करना ही सुविधाजनक होता है। धान में एजौला का प्रयोग हरी खाद के रुप में रोपाई से पहले भी किया जा सकता है। यह देखा गया है कि 5 टन एजौला प्रति हैक्टर की दर से हरी खाद के रुप में प्रयोग करने पर 30 कि.ग्रा. नत्रजन उर्वरक के बराबर लाभ प्राप्त होता है। धान की खड़ी फसल में एजौला के साथ लगभग 1 माह तक वृद्धि कराने के पश्चात गुड़ाई कर मिटटी में मिलाने पर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि इस प्रकार एजौला उत्पादन का कोई अतिरिक्त खर्च नही होता है। एजौला का धान के साथ एक फसल लेने से फसल को 25 से 30 कि. ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टर के बराबर लाभ प्राप्त होता है। इसी प्रकार इसकी दो या तीन फसल 60 से 90 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तक लाभ पहुचाने में सक्षम है। खरीफ मौसम में अधिक तापक्रम वाले क्षेत्रों में एजौला की वृद्धि धीमी होती है। अतः सह फसल के रुप में इसका प्रयोग करने पर कम ही लाभ प्राप्त होता है।

फास्फेट विलयकारी जैव उर्वरक (पी.एस.एम.)

कुछ जीवाणु (बैसीलस, स्यूडोमोनास इत्यादि) एवं कवक (एस्परजिलस, पैनिसिलियम इत्यादि) भूमि के अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील रुप में परिवर्तत कर इसे पौधो के उपयोग योग्य बना देते है। इन सूक्ष्म जीवों का प्रयोग फास्फेट विलयकारी जैव उर्वरक (पी.एस.एम.) के रुप में फसलो में फॉस्फोरस तत्व प्रदान करने के लिये किया जा सकता है। इस जैव उर्वरक का प्रयोग सभी धान्य, दलहनी एवं तिलहनी फसलों में किया जा सकता है। भूमि में विद्यमान घुलनशील फॉस्फोरस के प्रकार के आधार पर इन फसलो को 20–25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उर्वरक फॉस्फोरस के बराबर लाभ पहुचाते है। रॉक फॉस्फेट उर्वक के साथ इनके प्रयोग से 30–35 कि.ग्रा. फॉस्फोरस के बराबर लाभ प्राप्त किया जा सकता है। फॉस्फोरस के उर्वरक अपेक्षाकृत महगें होते है एवं इन उर्वरको की उपयोग क्षमता भी कम ही होती है। अतः फॉस्फोट विलयकारी जैव उर्वरको का प्रयोग फसलों में फॉस्फोरस तत्व की उपलब्धता के लिए आवश्यक रुप से करना चाहिये। इनका उपयोग नत्रजन प्रदान करने वाले जैव उर्वरकों (राइजोबियम, एजौटोवैक्टर, एजोस्पिएिलम) के साथ मिला कर भी किया जा सकता है। फॉस्फोट विलयकारी सूक्ष्म जीवाणु कई प्रकार के होत हैं।

जीवाणु: स्यूडोमोनास स्ट्रेइटा, बेसिलस पोलीमाइक्सा, बेसिलस मेगाटेरियम–वार–फॉस्फेटिकम, बेसिलस सरकुलान्स, बेसिलस सबटिल्स एवं बेसिलस रेथोनिस प्रमुख है।

फफूंद: एस्परजिलस अवामोरी, एस्परजिलम नाइजर, पेनिसिलियम डायजिटेटम, ट्राइकोडर्मा स्पीसीज आदि।

माइकोराइजा : माइकोराइजा कवक पौधो के साथ सांझेदारी कर पौधो को फॉस्फोरस एंव सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जस्ता आदि के अवशोषण में सहायक होती है। वैसिकुलर आरबस्कुलर माइकोराइजा (VAM) कवक विभिन्न धान्य एंव दलहनी फसलो के साथ साझेदारी कर फसलो को लाभ पहुचाती है। जैव उर्वरक के रुप में प्रयोग करने पर धान्य और दलहनी फसलों में इसका बहुत अच्छा प्रभाव देखा गया है। इस जैव उर्वरक के प्रयोग से फसलो में प्रयोग की जाने वाली उर्वरको की 25 से 30 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है परन्तु इसका व्यवसायिक रुप से उत्पादन न होने के कारण एवं कम उपलब्धता के करण फसलो में बहुत सीमित मात्रा में ही प्रयोग किया जा रहा है।

जैव उर्वरकों के उपयोग करने की विधि एवं मात्रा

राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम एंव फॉस्फेट विलयकारी जैव उर्वरको के प्रयोग के लिये बीज उपचार विधि ही सुविधाजनक एंव प्रचलन में है। धान्य फसलो में एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पिरिलम जैव उर्वरको के साथ पी.एस.एम. जैव उर्वरक का प्रयोग भी किया जा सकता है। इसी प्रकार दलहनी फसलों में राइजोबियम जैव उर्वरक के साथ भी पी.एस.

एम. जैव उर्वरको का प्रयोग किया जा सकता है। दो या अधिक जैव उर्वरको को एक साथ प्रयोग करने लिये इनकी आवश्यक मात्रा का एक साथ घोल बना कर बीजोपचार करना चाहिये।

1. बीजोपचार विधि : इस विधि से सोयाबीन के बीज को थाइरम से उपचारित करने के बाद राइजोबियम एवं फॉस्फेट जैव उर्वरक कल्चर के साथ–साथ बराबर–बराबर मात्रा में (5–10 ग्राम प्रति एक किलो बीज) लेकर 400–600 मिली लीटर पानी में घोल कर स्लरी बना लेते हैं, अब इस स्लरी को धीरे–धीरे एक एकड़ में लगने वाले बीज पर डालते जाते हैं और मिलाते जाते हैं तत्पश्चात् इस बीज को छायादार स्थान पर सुखा लेते हैं और तुरन्त बुवाई कर देते हैं। यह विधि बहुत असरकारक एवं सस्ती विधि है।

2. मृदा के कूडों में डालकर या सतह पर बिखेरकर : इस विधि में फॉस्फेट जीवाणु खाद को 2–3 किलाग्राम/हेक्टर की दर से 50 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई के पहले कूडों में डालते हैं इसके तुरन्त बाद बुवाई कर देते हैं। यदि फॉस्फेट जैव उर्वरक खेत में बिखेरना हो तो उस दशा में 2–3 किलोग्राम/हेक्टर कल्चर को 50 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर मृदा सतह पर बिखेर देते हैं। यदि खेत में नमी न हो तो तुरन्त सिंचाई कर देते हैं। यह विधि पहली विधि की तुलना में महंगी व कम लाभकारी है।

3. पौध जड़ का उपचार: आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की 3.5–5.0 कि.ग्रा. मात्रा को 4 लीटर पानी/1.00 कि.ग्रा. जैव उर्वरक के हिसाब से किसी चौड़े मुहं वाले बर्तन में घोल बनाएं। इसके बाद तैयार घोल में धान, मिर्च, टमाटर, गोभी, बैंगन, प्याज आदि पौध की जड़ों को 2–3 मिनट तक डुबोकर उपचारित कर लें तथा उपचारित पौध की खेत में रोपाई कर दें।

4. कन्द उपचार: आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की 3.75–6.25 कि.ग्रा. मात्रा को 15 लीटर पानी प्रति 1.00 कि.ग्रा. जैव उर्वरक की दर से घोल बनाकर गन्ना, आलू एवं कम अवधि वाली फसलों के लिए अर्थात् छः माह से कम समय में पकने वाली फसलो को 5–10 मिनट तक डुबोए रखें। तत्पश्चात् उपचारित कंदों की तुरंत बुवाई कर दें।

5. मृदा उपचार: लम्बी अवधि वाली फसलों के लिए अर्थात् छः माह से अधिक समय में पकने वाली फसलो के लिए आवश्यकतानुसार जैव उर्वरक की 3.75–6.25 कि.ग्रा. को 35–50 कि.ग्रा. गोबर/कम्पोस्ट की सड़ी खाद या नम उपजाऊ मिट्टी में मिलाकर भुरभुरा मिश्रण बना लें। फिर अंतिम जुताई के समय या फसल की पहली सिंचाई के पूर्व एक समान रूप से एक निश्चित क्षेत्र में बिखेर कर मिट्टी में मिला दें।

जैव उर्वरक एक जैव उत्पाद है अतः इनके प्रयोग का लाभ प्राप्त करने के लिये निम्न सावधानियों का पालन करना आवश्यक है।

सावधनियाँ

1. जैव उर्वरको से मिलने वाला लाभ जैव उर्वरको की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। अतः किसी सरकारी संस्थान या विश्वसनीय स्रोत से उच्च गुणवत्ता का जैव उर्वरक ही क्रय करना चाहिये।
2. जैव उर्वरको का प्रयोग इनके लिये निर्धारित अन्तिम तिथि से पूर्व ही कर लेना चाहिये।
3. जैव उर्वरको का चयन फसल के अनुसार किया जाना चाहिये विशेष रुप से दलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले राइजोबियम जैव उर्वरक का प्रत्येक दलहनी फसल का राइजोबियम अलग होता है जबकि पी.एस.एम. जैव उर्वरक सभी फसलो में प्रयोग किये जा सकते है।
4. जैव उर्वरको को सीधे रसायनिक उर्वरको एवं खेती में प्रयोग किये जाने वाले अन्य रसायनो (कीटनाशक व खरपतवारनाशक आदि) के सर्म्पक में नही आने देना चाहिए। इससे लाभ की अपेक्षा अधिक हानि हो सकती है।
5. जैव उर्वरको से बीजोपचार किसी स्वच्छ फर्श, पालीथीन बिछाकर या सीड़ ड्रेसर से करना चाहिये।
6. यदि किसी रसायन से बीजोपचार किया जाना आवश्यक हो तो बीज का पहले रसायनो जैसे फफून्दीनाशी के बाद कीटनाशी दवा से उपचारित कर उसके पश्चात जैव उर्वरको से बीजोपचार करना चाहिए। ऐसी स्थिति में जैव उर्वरको की मात्रा को दोगुनी करना अधिक हितकर रहती है।
7. जैव उर्वरको से उपचार के बाद बीज को अधिक देर या रात भर नही रखना चाहिये। अतः बीजो को छाया में कुछ देर सुखा कर शीघ्र ही बुवाई कर देनी चाहिये एंव कूडों का बन्द कर देना चाहिए।
8. जैव उर्वरको से उपचारित बीजो को सीधे धूप में नही सुखाना चाहिये एवं बीज को सीधे रसायनिक उर्वरको या अन्य कृषि रसायनो के सर्म्पक में भी नही आने देना चाहिये वरना् इनकी प्रभाविकता कम हो जाती है।

अतः कृषक उर्पयुक्त वैज्ञानिक विधियों को अपना कर अधिक फसलोत्पादन के साथ–साथ उत्पादन लागत को कम करते हुये अधिक आय प्राप्त कर सकते है।

दलहनी फसलें : भूमि उर्वरता बढ़ाने व टिकाऊ खेती का आधार

नूपुर शर्मा, बी. एल. मीना एवं के. सी. मीना
कृषि विज्ञान केन्द्र, सवाईमाधोपुर एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, अंता–बारां

मृदा स्वास्थय से अभिप्राय प्राकृतिक संसाधन आधार व पर्यावरण को नुकसान पहुचायें बिना दीर्घकालिक रूप से सुरक्षित व पौष्टिक फसल का उत्पादन मानव व पशु स्वास्थ्य को बढ़ाने के उद्देश्य के लिए करना है। दिन प्रतिदिन मृदा में उपस्थित जैविक पदार्थो की संख्या अपघटित होती जा रही है। खाद्य फसलों के पश्चात दलहनी फसलें पौष्टिक तत्वों व आमदनी के उद्देश्य से मनुष्य का जीवन में बहुत महत्व रखती है। दलहनी फसलें पोषण सुरक्षा, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन व स्थायी फसल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण फसलें है तथा समय के साथ वर्षा आधारित खेती वाले क्षेत्रो में फसल प्रणाली का एक आतंरिक घटक बनी रही है। दालों की लगभग 8000 वर्ष पूर्व से प्राचीन खाद्य फसल के रूप में खेती की जा रही है। आहार प्रोटीन का समृद्ध स्त्रोत होने के साथ साथ यह मृदा की उर्वरता को बढ़ाने की क्षमता रखती है क्योंकि यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थरीकरण के साथ, जड़ो व पत्तियों के द्वारा वृहद् मात्रा में मृदा में जैविक पदार्थो को संचित करती है। ये राइजोबियम बैक्टीरिया के साथ मिलकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थरीकरण करती है तथा नत्रजन उर्वरको के अतिरिक्त उपयोग को कम करती है।

भारत विश्व में दलहनी फसल उत्पादन में आगे है। देश में मुख्य रूप से दलहनी फलों में चना (48 प्रतिशत), तुर (15 प्रतिशत), मूंग (7 प्रतिशत), उड़द (7 प्रतिशत), मसूर (5 प्रतिशत) तथा मटर (5 प्रतिशत) भाग में बोया जाता है। देश में लगातार दलहनी फसलों की उत्पादन बढ़ता जा रहा है जो कि आर्थिक व सांख्यिकी निदेशालय के अनुसार वर्ष 2018 में उत्पादन 23.40 मिलियन टन था। मध्य प्रदेश , राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश दलहनी फसलों के उत्पादन में क्रमशः 33.38, 15.71 प्रतिशत तथा 10.24 भूमिका निभाते है।

दलहनी फसलों का मृदा के गुणों व संसाधनों पर प्रभाव : दलहनी फसलें मृदा के कार्बनिक पदार्थो, सरंध्रता, पोषक तत्वों का पुनः नवीनीकरण,मृदा पी. एच मान को कम करना,मृदा की संरचना को सुधारना, सूक्ष्म जीवों की संख्या को मृदा में बढ़ाना, खरपतवारो को कम करना आदि गुणों को बढ़ाते है।

नाइट्रोजन का स्थरीकरण : दलहनी फसलों की एक मौसम में नाइट्रोजन स्थरीकरण की अनुकूलतम दर लगभग 1.0 किलो प्रति हेक्टेयर प्रति दिन होती है, जो की वहां के वातावरण में वह संभावित नाइट्रोजन स्थरीकरण क्षमता कहलाती है। एक दलहनी फसल के द्वारा स्थिर किये गए नाइट्रोजन का लगभग दो तिहाई हिस्सा आने वाली फसल के लिए उपलब्ध रहता है। दलहनी फसलें लगभग 30 से 150 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर स्थिर कर सकती है परन्तु यह राइजोबियम की संख्या, किस्म, फसल, मृदा की संरचना व गुणों, वातावरण कारकों पर भी निर्भर करता है।

मृदा जैविक कार्बन पर प्रभाव : जैसा की हम जानते है दलहनी फसलें प्रोटीन का अच्छा स्त्रोत होती है। इसके फसल अवशेष नाइट्रोजन व कार्बन का अधिक मात्रा में संचय रखते है जो की बैक्टीरिया के लिए भोजन का अच्छा स्त्रोत होता है। दलहनी फसलों के द्वारा उपलब्ध नाइट्रोजन से फसल अवशेष का अपघटन तथा मृदा में जैविक कार्बन में परिवर्तन होने की मात्रा को बढाती है।

तालिका : 1 नाइट्रोजन का मृदा में स्थरीकरण की मात्रा

फसल	नाइट्रोजन स्थरीकरण (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)	नाइट्रोजन की मात्रा को छोड़ना (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)
चना	26 से 63	–
लोबिआ	53 से 85	50.3
मसूर	35 से 100	32.8
मूंग	50 से 55	34.5
अरहर	68 से 200	–
मटर	46	59.4
उड़द	50 से 60	38.3

(स्त्रोत – ब्रह्मप्रकाश, *एट आल.* 2004, सिंह, *एट आल.* 1981, गिल, *एट आल.* 2009.)

पोषक तत्वों की पुनरावृत्ती होना : दलहनी फसलों की गहरी जड़ प्रणाली होने के कारण यह गहराई में उपस्थित पोषक तत्वों को आसानी से उपलब्ध करवाने की क्षमता रखती है। जिससे उर्वरक व पोषक तत्वों का अधिक उपयोग होता है तथा लीचिंग के कारण पोषक तत्वों की हानि से भी बचते है। वैस्कुलर माइकोराइजा के साथ दलहनी फसलों की जड़ें पोषक तत्व तथा जल की उपलब्धता बढाती है। दलहनी फसलों की जड़ो से निकलने वाले कार्बनिक अम्ल मृदा मे अनुपलब्ध पोषक तत्वों को उपलब्ध करवाता है।

मृदा की गुणवत्ता में सुधार : मृदा की गुणवत्ता में सुधार मुख्य रूप से जड़ो द्वारा स्त्रावित किया गया प्रोटीन ग्लोबमीन के कारण होता है जो की ग्लू का काम करता है तथा मृदा के कणों को आपस में जोड़ता है। दलहनी फसलें मृदा में जैव व सूक्ष्म तत्व की विविधता को बढ़ावा देती है जो की मृदा के स्वस्थ जीवन को स्थिरता की और अग्रसर करती है।

मृदा में कीट व रोग की साइकिल को तोडना : दलहनी फसलों को फसल प्रणाली में शामिल करने से यह मृदा में खरपतवार, कीट व रोगों की समस्याओं को कम करता है। भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर में हुए एक लम्बे अनुसंधान के अनुसार चावल–गेंहू फसल चक्र में दलहनी फसलों को शामिल करने से फ्लैरिस माइनर (गेंहू का मामा) खरपतवार, रोग व कीटों का प्रकोप कम होता है।

दलहनी फसलों का फसल अवशेष के रूप में उपयोग : दलहनी फसलों के अवशेषों को मृदा में मिलाने से यह मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा तथा मृदा की संरचना व आधारभूत गुणों को भी बढाती है। छोटी अवधि वाली जायद व खरीफ की दलहनी फसल के अवशेषों को मृदा में मिलाने से यह आने वाली रबी की फसल में लगभग 25 से 50 प्रतिशत नाइट्रोजन फॉस्फोरस व पोटाश की मांग को पूरा कर सकती है। दलहनी फसलों के पत्तियों के गिरने से भी अपघटन के पश्चात पोषक तत्वों का मृदा में संचय होता है।

पानी की उपयोग दक्षता : खाद्यान फसलों की तुलना में दलहनी फसलों की पानी की आवश्यकता कम तथा उपयोग दक्षता अधिक होती है। गहरी जड़ प्रणाली होने के कारण यह मृदा की गहरी परतों से जल को लेने की दक्षता रखती है। धान को 1000 से 2200 मिली , गेंहू को 500 से 650 मिली पानी की आवश्यकता होती है जबकि दलहनी फसलों को 150 से 250 मिमी पानी पर्याप्त रहता है ।

आम के फलों के विपणन और प्रसंस्करण के माध्यम से लाभ में वृद्धि

जितेन्द्र सिंह शिवरान, राकेश कुमार जाट एवं मोहन लाल जाट
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड़, सरदार कृषि नगर दांतीवाड़ा
कृषि विश्वविद्यालय, जगुदण, मेहसाणा एवं चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

आम एक उष्णकटिबंधीय फल है, क्योंकि इसकी नाजुक गूदा, अद्वितीय स्वाद, जो बहुत लोकप्रिय है और ''उष्णकटिबंधीय फलो का राजा'' के रूप में जाना जाता है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का मतलब खाने की वस्तुओं की प्रोसेसिंग कर उसे नए रूप में पेश करने के कारोबार से है। भारत में लोगों की तेजी से बदलती लाइफ स्टाइल ने खाद्य प्रसंस्कृत उत्पादों की मांग में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। फलों को तुड़ाई के उपरान्त विपणन के लिए आकार, रंग व किस्म के अनुसार दो–तीन श्रेणियों में छांट लेना चाहिए। श्रेणीकरण के दौरान रोग ग्रसित, सड़े, कटे और पके फलों को अलग कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् ही पैकिंग प्रारम्भ करनी चाहिए।

पैकिंग

आम को पैक करने के लिए विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के पात्र, जैसे टोकरियां, क्रेट, बक्से, आदि प्रयोग में लाये जाते हैं। पश्चिमी भारत में आम के फलों को पैक करने के लिए बांस की टोकरियों का उपयोग होता है। आम को परिपक्व अवस्था में पैक करने के लिए लकडी या प्लास्टिक के क्रेट उपयुक्त होते हैं। पैकिंग के पात्रों में फलों को खरोंच आदि से बचाने के लिए उनकी तली में और चारों ओर घास, पुआल, आम की पत्तियों, कागज की कतरनों एवं भूसा इत्यादि को बिछाया जाता है। दूरस्थ स्थानों पर ले जाने के लिए फलों को पूर्ण विकसित अवस्था में तोड़ना चाहिए। इन्हें लकड़ी के झरोखेदार क्रेटों में हर परत के बीच कागज की कतरनों को रखकर पैक किया जाता है। पैकिंग के विभिन्न आकार–प्रकार वाले पात्रों का मानकीकरण करना आवश्यक है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार आम की प्री–पैकिंग 200 गेज मोटी पॉलिथीन की छोटी, छिद्र युक्त थैलियों में करने से आम अधिक सुरक्षित रहते हैं। विदेशी बाजारों में इस प्रकार की पैकिंग अधिक लोकप्रिय है। बक्से या टोकरियों में पैक करते समय प्रत्येक फल को टिशू पेपर / अखबार में लपेट देना चाहिए। टिशू पेपर को डाइफिनाइल के घोल से उपचारित कर लेना चाहिए। निर्यात के लिए फलों की पैकिंग जालीदार कार्डबोर्ड के बक्सों में की जाती है। ऐसे बक्सों में वायु के आवागमन के लिए कुछ छिद्र भी होते हैं। इनके अन्दर बहुत से खाने होते हैं और प्रत्येक खाने में एक–एक आम को उपचारित टिशू पेपर में लपेट कर रखा जाता है।

नजदीकी देशों में पानी के जहाज से आम भेजने के लिए टोकरियां और लकड़ी के क्रेट भी प्रयोग में लाये जाते हैं। प्रत्येक क्रेट या टोकरी में 25–35 कि.ग्रा. आम पैक किये जाते हैं। दूरस्थ स्थानों को भेजे जाने वाले फलों में कुछ परिपक्वता तो परिवहन के दौरान ही आ जाती है। आम पकाने के लिए बहुत–सी विधियों को प्रयोग में लाया जाता है। एथिलीन के प्रयोग द्वारा भी आम को पकाया जा सकता है। परिपक्व हरे आमों को पके आमों के साथ रखने पर पकने की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। आम को दूर–दराज के क्षेत्रों में रेल की अपेक्षाकृत ट्रकों द्वारा भेजना अधिक लाभप्रद होता है। दूर के बाजारों में आम रेल द्वारा भेजने से फल अधिक क्षतिग्रस्त होते हैं। यह क्षति अधिकांशतः रेल के डिब्बों के संचलन में देरी के कारण होती है। ट्रक परिवहन के बहुत से लाभ हैं, जैसे ट्रक द्वारा फल निर्धारित समय पर अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच जाते हैं अतः आम व्यापारी इसके द्वारा आम भेजना अधिक पसन्द करते हैं। फलों को अधिक दूर भेजना हो, तो रेल द्वारा ही इनका परिवहन उचित रहता है। आम के विपणन में वितरण का प्रमुख स्थान है। उपभोक्ता तक पहुंचने के पूर्व आम का बहुत सी एजेंसियों के हाथों फेर–बदल होता है।

आम का थोक वितरण उत्पादकों के द्वारा नहीं किया जाता है, बल्कि बाग फलते ही ठेकेदार को ठेके पर दे दिया जाता। ये ठेकेदार आम तैयार होने तक बाग की देखभाल करते हैं और फिर अपने अनुसार फलों का विक्रय करते हैं। ऐसे उत्पादक बहुत कम होते हैं, जो फलों को सीधे कमीशन एजेन्ट के पास भेज देते हैं। कमीशन एजेन्ट को आम भाषा में दलाल कहते हैं। इनमें ऐसे अग्रवर्ती एजेन्ट भी सम्मिलत हैं, जो परिवहन इत्यादि से संबद्ध होते हैं। आम के बाजार के दो–तिहाई व्यवसाय पर इन्हीं का नियंत्रण होता है।

प्रसंस्करण

विश्व में पाये जाने वाले अनेक फलों में आम ही ऐसा फल है, जो हर अवस्था में संसाधन इकाई योग में लाया जाता है। आम के बहुत से संसाधित पदार्थ बनाये जाते हैं, जिनमें प्रमुख निम्न हैं :

1. अमचूर: हरे आम का पाउडर अमचूर कहलाता है। आम तौर पर हरे आमों को छिलका के बाद गंधक से उपचारित किया जाता है। फिर उनकी फांकों को सुखाया जाता है। इन फांकों का पाउडर बना लेने पर अमचूर तैयार हो जाता है। इसके लिए आंधी आदि से गिरे कच्चे फलों का उपयोग किया जाता है।

2. आम का अचार: इसके लिए कच्चे आम का प्रयोग किया जाता है। भारत के विभिन्न भागों में आम का अचार विभिन्न विधियों द्वारा बनाया जाता है। छिलके सहित एवं छिलका रहित अचार तेल में अथवा तेल के बिना भी बनाया जाता है। अचार में 5–6 प्रतिशत खटास की स्थिति सबसे उपयुक्त पाई गई है। सामान्यतः सरसों का तेल ही उपयोग में लाया जाता है। नमक लगी हुई आम की फांकों से पानी निकाल कर उसमें मसालों एवं तेल को अच्छी तरह से मिला देते हैं। इसको शीशे के जार में भरकर 1–2 से.मी. ऊपर तक तेल भर देते हैं, ताकि इसमें हवा न जा पाये। अचार में 20 प्रतिशत नमक मिलाकर इसे सूक्ष्मजीवों द्वारा होने वाली क्षति से बचाया जा सकता है। सिरका मिला देने पर भी अचार को बिना खराबी के काफी दिनों तक रखा जा सकता है।

3. आम की चटनी: यह ताजे आम या नमक के घोल में परिरक्षित हरे आम की फांकों द्वारा बनाई जाती है। इसमें कुल घुलनशील तत्व 55-60° ब्रिक्स तथा खटास 1-0-1-5 प्रतिशत होती है। इसे नमक, चीनी, मसाले एवं सिरके को निश्चित अनुपात में मिलाकर बनाया जाता है। यह एक अत्यन्त लोकप्रिय परिरक्षित पदार्थ है।

4. नमक के घोल में आम की फांकें: इनका इस्तेमाल आम की चटनी और अचार बनाने के लिए सुरक्षित पदार्थ के रूप में किसी भी समय किया जा सकता है। इनका बड़ी मात्रा में निर्यात होता है। इनमें 200 पी.पी.एम. सल्फरडाइऑक्साइड मिलाने से ये सही प्रकार से परिरक्षित रहती हैं। नमक में एक प्रतिशत कैल्सियम क्लोराइड मिलाने से फांकों की बनावट यथावत रहती हैं।

5. आम का पना: लू के समय ये आम पन्ना (आयुर्वेदिक इलाज) सबसे ज्यादा फायदेमंद माना जाता है। इसमें आम की फाकों में चीनी, नमक, पानी, जीरा, काली मिर्च एवं सिट्रिक अम्ल मिलाकर 20–30 मिनट तक उबाला जाता है। उसके बाद इसे छान लेते हैं। इसको ठंडा करके बोतलों में भर दिया जाता है।

6. आम का गूदा: गूदा निकालने की मशीन द्वारा आम का गूदा निकाल लिया जाता है। गूदे का पी.एच. मान लगभग 4.0 रखा जाता है। उबलते हुए गर्म गूदे को उचित माप के डिब्बों में भरने के बाद सील कर दिया जाता है। फिर इन्हें संसाधित कर के ठंडा कर लिया जाता है। कुछ लोगों के तार आम के गूदे में एस्कार्बिक अम्ल (100 मि.ग्रा./100 ग्रा.) मिला देने से गूदे की विटामिन सी की मात्रा में गिरावट नहीं आती है। आम गूदा /गाढ़ेपन से रस, शहद, पेय पदार्थ, जैम, फल चीज और कई अन्य प्रकार के पेय पदार्थ तैयार किए जा सकते हैं।

7. आम का जैम: इसके लिए पूर्ण सुवास लिये हुए पके फलों को प्रयोग में लाया जाता है। आम के गूदे को उतनी ही मात्रा में चीनी के साथ 68-70° ब्रिक्स तक पकाया जाता है। इसमें सिट्रिक अम्ल एवं पेक्टिन की कम मात्रा होने से यह अच्छी तरह जम जाता है। इसे गर्म अवस्था में ही डिब्बों में भर लेना चाहिए और वायुरोधक करते हुए सील बंद कर देना चाहिए।

8. आम का स्क्वैश: यह पेय आम के गूदे में चीनी, अम्ल और पानी मिलाकर बनाया जाता है। तैयार शरबत में 25 प्रतिशत गूदे की मात्रा, 45 प्रतिशत मिठास और 1.25 प्रतिशत अम्ल की मात्रा होती है। इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए इसमें 350 पी.पी.एम. सल्फर डाइऑक्साइड मिलाया जाता है।

9. आम का नेक्टर: उत्तरी भारत की किस्मों में दशहरी प्रजाति नेक्टर के लिए सबसे उपयुक्त पायी गई है। नेक्टर में आम के गूदे की मात्रा 20 प्रतिशत होती है, जिसका ब्रिक्स 20° होता है और अम्ल की मात्रा 0.3 प्रतिशत होती है। दशहरी एवं लंगडा किस्मों के बराबर अनुपात वाले मिश्रण से सबसे अच्छा नेक्टर तैयार होता है।

10. आम पापड़ या अमावट: आम पापड़ एक आम फल का चमड़ा है जिसे आम के गूदे से बनाया गया होता है और इसे चीनी के घोल में मिलाया जाता है। आम के गूदे को पकाकर गर्म कर लिया जाता है। इसमें 5 प्रतिशत चीनी, 0.05 प्रतिशत सिट्रिक एसिड एवं 0.1 प्रतिशत पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट मिला दिया जाता है। इसके पश्चात् इसको पतली परतों में फैलाकर सुखा लेते हैं। गूदे को सुखाने की प्रक्रिया में एस्कार्बिक एसिड और कैरोटीन विटामिन में काफी कमी आ जाती है। आम पापड़ केवल आम के गूदे को सुखाकर भी बनाया जा सकता है। इसमें लागत कम आती है।

11. आम घान्य पपड़ी: यह पदार्थ आम के गूदे में गेहूं का आटा मिलाकर निश्चित पी. एच. मान पर बनाते हैं। आम के गूदे में गेहूं के आटे के अतिरिक्त, ग्लूकोस, चीनी, कैल्सियम कार्बोनेट, सोडियम बाइकार्बोनेट और पेक्टिन को मिश्रित करके इसे बनाया जाता है। पूरे मिश्रण को मशीन के अन्दर डाल कर मिलाया जाता है। इसे विभिन्न परतों में सुखा लिया जाता है। इसके लिए दशहरी एवं अल्फान्सो प्रजातियां उत्तम पाई गई हैं।

12. आम की टॉफी: इसे आम के गूदे में चीनी, ग्लूकोस, वसा रहित दूध का पाउडर एवं वनस्पति घी मिलाकर बनाया जाता है। पूरे मिश्रण को पकाने के बाद मोटी परत के रूप में फैला दिया जाता है और इसके सूखने पर टॉफी के आकार के टुकड़े काट लिये जाते हैं।

13. आम कस्टर्ड पाउडर: इसे आम के गूदे में वसा रहित दूध का पाउडर, चीनी, स्टार्च, बाइकार्बोनेट और नमक आदि मिलाकर बनाया जाता है। इसमें विटामिन सी विद्यमान रहती है। यह बच्चों के लिए एक स्वास्थ्यवर्धक आहार माना जाता है इसे बच्चों को खिलाने की संस्तुति की जाती हैं।

सब्जियों की बीजोत्पादन तकनीक

राजेश चौधरी, अशोक चौधरी, मनीषा धायल एंव सुरेश कुमार जाट

एस. के. एन. कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जी. बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

बीज एक महत्वपूर्ण कृषि आदान है, जिसकी गुणवत्ता पर फसल की पैदावार निर्भर करती है। वर्तमान समय में सब्जियों के बीजोत्पादन का व्यवसाय जोरों पर चल रहा है। इसके बावजूद सब्जियों का अच्छा बीज एक सामान्य किसान की पहुंच से काफी दूर है तथा बाजार में पाये जाने वाले बीजों की प्रमाणिकता पर सवालिया निशान लगा हुआ है। आज हजारों बीज उत्पादक कम्पनियाँ बाजार में तो बीज उत्पादन का कार्य कर रही हैं। परन्तु वास्तविकता में खेत में बीज उत्पादन तो कुछ अच्छी कम्पनियों तक ही सिमित है। अतः आवश्यकता है, आज प्रत्येक किसान को एक सटीक वैज्ञानिक की भूमिका निभाते हुए अपनी आवश्यकता के लिए कुछ अच्छे बीज का उत्पादन करने की, ताकि बाजारीय हैरा–फेरी पर भी रोक लगे तथा बीजों की आपूर्ति भी बराबर होती रहे। विभिन्न प्रकार के सब्जियों के बीज तैयार करने की तकनीक में विभिन्नता है, जो उन सब्जियों की विशेषता के कारण होती है। कुछ सामान्य बातें ऐसी है, जो सभी प्रकार के सब्जियों के बीजोत्पादन में उपयोगी है।

भूमि का चयन : भूमि की संरचना और उर्वरता बीज उत्पादक फसल के अुनसार उपयुक्त होनी चाहिए। सामान्यत कन्दीय फसलों के लिए उपजाऊ दुमट–बलुआर तथा उचित जल निकास व्यवस्था वाली भूमि होनी चाहिए। फल वर्गीय (टमाटर, बैंगन, कद्दूवर्ग) तथा फलीदार (मटर, मैथी) सब्जियों के लिए दोमट जिसमें जीवांश की मात्रा अधिक हो उचित रहती है। बीज की फसल सामान्य फसल की अपेक्षा अधिक समय लेती है इसलिए, भूमि उपजाऊ, जीवांश युक्त, खपतवार रहित, अधिक जल धारण क्षमता रखने वाली होनी चाहिए। उस भूमि में वह फसल पहले न उगायी हो जिसका बीजोत्पादन किया जाना है। प्रक्षेत्र का क्षेत्रफल इतना होना आवश्यक है कि फसल के अनुसार मानक विलगन फासला रखा जा सके। बीज उत्पादन क्षेत्र के समीप कोई जल एवं वायु प्रदूषक ईकाई नही होनी चाहिए तथा क्षेत्र कीट एवं रोगों से मुक्त होना चाहिए।

जलवायु : बीजोत्पादन हेतु प्रत्येक फसल के लिए विशिष्ट जलवायु की आवश्यकता होती है। भारत में लगभग सभी प्रकार की जलवायु पाई जाने के कारण सभी फसलों का बीज उत्पादन संभव है। फसल उत्पादन के लिए आवश्यक जलवायुवीय परिस्थियों के साथ–साथ कुछ अतिरिक्त कारकों की आवश्यकता भी होती है। जैसे उपोष्ण एवं उष्ण जलवायु क्षेत्रों में शीतकाल में गोभीवर्गीय फसलों का उत्पादन तो किया जा सकता है परन्तु बीज उत्पादन नही हो पाता है। गोभीवर्गीय फसलों के लिए शीतोष्ण जलवायु, टमाटर, बैंगन, मिर्च तथा कद्दूवर्गीय फसलों के लिए उपोष्ण एवं उष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। कन्द वर्गीय फसलों के लिए विशेष उष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। आवश्यक जलवायुवीय परिस्थिती से अतिरिक्त क्षेत्रों में बीज उत्पादन करने से बीज की गुणवता, उत्पादन एवं अंकुरण क्षमता पर प्रभाव पड़ता है।

विलगन फासला (आइसोलेशन दूरी) : किस्मों की आनुवंशिक शुद्धता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि एक किस्म का दूसरी किस्म के साथ संकरण न होने पाये। एक किस्म के पुष्पों के परागण दूसरी किस्म के मादा पुष्पों तक न पहुंच पाये इसके लिए दो किस्मों के खेतों का फासला पर्याप्त रहना आवश्यक है, जिससे कि परागण न होने पाए तथा फसल शुद्धता बनी रहे। पर–परागित सब्जियों, में विलगन फासला ज्यादा रखना पड़ता है। प्याज, मूली, गाजर, गोभी पालक शलजम तथा चौलाई आदि पर–परागित सब्जियाँ हैं। स्वपरागित सब्जियों में भी विलगन फासला की आवश्यकता तो होती है परन्तु पर–परागित सब्जियों की अपेक्षा काफी कम होती है। सेम, मटर बरवटी, ग्वारफली, फ्रेंचबीन, बैगन, टमाटर, मिर्च तथा भिंडी स्व–परागित सब्जियाँ है।

तालिका :1 प्रमुख सब्जियों का विलगन फासला (आइसोलेशन दूरी)

पर–परांगित सब्जियाँ			स्व–परांगित सब्जियाँ		
सब्जियाँ	**आधार बीज उत्पादन हेतु दूरी (मीटर)**	**प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु दूरी (मीटर)**	**सब्जियाँ**	**आधार बीज उत्पादन हेतु दूरी (मीटर)**	**प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु दूरी (मीटर)**
फूल गोभी	1600	1000	टमाटर	50	25
पत्ता गोभी	1600	1000	बैंगन	200	100
गाँठ गोभी	1600	1000	मिर्च	400	200
मूली	1600	1000	भिंडी	400	200
गाजर	1000	800	मटर	20	10
चुकन्दर	1600	1000	लोबिया	50	25
प्याज	1600	400	फ्रांसबीन	50	25
पालक	1600	1000	ग्वारफली	50	25
चौलाई	500	500	सेम, मैथी, कसूरी मेथी	50	25

बीज का चुनाव : बीज उत्पादन करने के लिए बीज (मूल एवं आधार बीज) की श्रेणी सुनिश्चित एवं विश्वसनीय स्त्रोत (राष्ट्रीय बीज निगम एवं राज्य बीज निगम) से प्राप्त की जानी चाहिए। उसमें उत्तम बीज के सभी गुण होने चाहिए। पूर्व फसलों के गुणों एवं उत्पादकता को ध्यान में रखकर बीजों का चुनाव करना चाहिए। उनमें श्रेष्ठ गुणों का समावेश होना चाहिए। जिस स्थान पर बीज उत्पादन का कार्य किया जा रहा हो, उस क्षेत्र की प्रतिकूल परिस्थितियों में उसमें आनुवंशिक परिवर्तन तथा रोग और कीट के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न हो सकती है।

बीज उपचार : बीज को बीज एवं मृदा जनित रोगों के लिए कवकनाशी तथा कीटों से बचाने के लिए कीटनाशी दवाओं से उपचारित करना चाहिए। फलीदार बीजों में उत्पादन बढाने के लिए जीवाणुओं के संर्वधन से उपचार करना चाहिए। बीजों की अंकुरण क्षमता बढ़ाने तथा सुसुप्तावस्था भंग करने के लिए भी बीजों का उपचार करना आवश्यक होता है।

(i) कवकनाशी : केप्टान, थायरम, 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज में मिलानी चाहिए।
(ii) कीटनाशी : क्लोरोपाईरीफॉस एक लीटर प्रति हैक्टर सिंचाई जल या बीजों में मिलाकर प्रयोग करनी चाहिए।
(iii) जीवांणु संर्वधन : राईजोबियम, फॉस्फोरस घोलक जीवाणु 200–300 ग्राम मात्रा प्रति हैक्टर दर से फलीदार फसलों के बीजों में गुड़ के साथ मिलाना चाहिए।
(iv) अंकुरण क्षमता वर्धक : जैसे जिब्रेलिक अम्ल एवं थायोयूरिया बीजों की सुसप्तावस्था भंग करने के लिए प्रयोग में लिए जा सकते हैं। बीजों उपचार हेतु सर्वप्रथम फफूंदनाशी, उसके बाद कीटनाशी और अन्त में जीवाणु कल्चर का प्रयोग करना चाहिए।

खेत की तैयारी एवं बीज बोना : भूमि की प्रकृति तथा उगायी जाने वाली सब्जियों के अनुरूप खेत की तैयारी की जानी चाहिए। दो से तीन बार जुताई करके तथा पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी बनाकर उचित आकार की क्यारियाँ तैयार करनी चाहिए, दो क्यारियों के मध्य सिंचाई करने व रोगिंग करने तथा फलों के निरीक्षण के लिए स्थान रखना चाहिए। बीज उत्पादन में खरपतवार नियत्रंण के समन्वित प्रयास करना चाहिए, जिसमें ग्रीष्मकालिन जुताई, निराई–गुड़ाई तथा शाकनाशी दवाओं का भी उपयोग किया जा सकता है। बीजों की बुवाई फसल उत्पादन के समान ही करनी होती है, परन्तु पौधों की आपसी दूरी बढ़ा देनी चाहिए और बीज दर कम कर देनी चाहिए।

(i) प्रतिरोपित की जाने वाली सब्जियाँ : बैंगन, मिर्च, टमाटर, प्याज तथा गोभी वर्गीय सब्जियों की पहले नर्सरी में पौध तैयार करनी चाहिए जब पौधे लगभग 21 से 28 दिन के हो जाऐ उचित दूरी रखते हुए तैयार खेत में लगाकर सिंचाई करनी चाहिए।

(ii) बीजों की सीधी बुवाई वाली सब्जियाँ : मटर, फ्रेंचबीन, चौलाई, पालक, सेम, कद्दू, घीया, तोरई (फलीदार, कद्दूवर्गीय, पत्तेदार सब्जियाँ) आदि सब्जियों के बीज सीधे खेत में ही लगाना चाहिए।

(iii) कन्दों की बुवाई : अरबी, अदरक, आलू आदि फसलों के कन्द लगाकर बीज पैदा किया जा सकता है। बीजों की मात्रा प्रति हैक्टर, बोने का समय, दूरी, सिंचाई एवं पौध संरक्षण उस फसल के उत्पादन विधि के अनुसार ही करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : भूमि तथा फसल की मांग के अनुसार खाद एवं उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। फसल उत्पादन की अपेक्षा बीज उत्पादन हेतु अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पोषक तत्वों में नाईट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश का विशेष महत्व है। इन तीनों तत्वों का सन्तुलित रूप से उपयोग किया जाना चाहिए। नाइट्रोजन की अधिक मात्रा देने से वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा बीज उत्पादन कम हो जाता है। फॉस्फोरस बीजों की परिपक्वता तथा पुष्टि के लिए आवश्यक है। पोटाश पुष्पन को प्रोत्साहित करने के साथ ही पौधों में रोग प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करता है। आवश्यक नाईट्रोजन फसल की आवश्यकता के अनुसार 2–3 बार में तथा फॉस्फोरस व पोटाष की सम्पूर्ण मात्रा फसल बुवाई से पूर्व मृदा में जड़ की गहराई तक मिलाना चाहिए। अन्य पोषक तत्वों में बोरान, मैगनीज, जिंक, कॉपर, आयरन और मॉलीब्डेनम प्रमुख हैं जो बीजों की गुणवत्ता व ओज सुधारने में महत्वपूर्ण भुमिका निभाते हैं। इनकी पूर्ति जैविक खादों से हो जाती है परन्तु कमी के लक्षण दिखाई देने पर पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। टमाटर में कैल्शियम व बोरान मूली में सल्फर, गाजर में पोटाश तथा गोभी वर्गीय सब्जियों में बोरान और मॉलीब्डेनम का विशेष महत्व है।

सिंचाई : फसल की प्रकृति व भूमि की किस्म के अनुसार फसलों को सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसलों की क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई का विशेष ध्यान आवश्यक होता है। पुष्पन के पश्चात् यदि जल की कमी हो गई तों बीजों का पूर्ण रूप से विकास नही हो पाता है। परिपक्व अवस्था में अधिक सिंचाई नही करनी चाहिए।

रोगिंग : किस्म की भौतिक शुद्धता बनाये रखने के लिए बढ़वार की अवस्था में बाह्य आकार में भिन्न या विजातीय पौधों तथा दूसरी किस्मों व फसलों के पौधों को निकाल देना चाहिए। फसल की प्रारम्भिक अवस्था से ही अलग प्रकार के दिखने वाले पौधे, रोगी कीटग्रस्त तथा विकृत फलों का बीज उत्पादन हेतू चयन नही करना चाहिए। शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिऐ 3–5 बार रोगिंग की आवश्यकता पड़ती है।

परागण एवं परागणकर्ता : बीज उत्पादन में उचित परागण का विशेष महत्व है। पर–परागित सब्जियों में परागणकर्ता का विशेष महत्व होता है। अधिकांश फसलों में परागणकर्ता मधुमक्खियाँ होती है। इसलिए पर परागित फसलों के बीज उत्पादन कार्यक्रम के साथ मधुमक्खी पालन विशेष रूप से लाभदायक होता है। पुष्पन के समय प्रतिकूल वातावरण जैसे तेज धूप, तेज हवा, गर्मी, कोहरा, भारी वर्षा तथा प्रदूषित वातावरण का बीज उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पुष्पन व फलन के समय कीट व रोगों के नियन्त्रण हेतु प्रयुक्त रसायन भी परागण व परागणकर्ता की क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। उचित वृद्धि नियामकों का प्रयोग कर बीज उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

बीज तैयार करना : सब्जियों में दो विधियों से बीज तैयार किया जाता है।

बीज से बीज विधि : इस विधि के अन्तर्गत सब्जियों के बीज बनने की अवस्था तक उसी स्थान में रहने दिया जाता है, जहाँ पर प्रारम्भ में लगायी जाती है। जैसे टमाटर, बैंगन, मिर्च, भिण्डी, मटर, ग्वारफली, कद्दूवर्गीय सब्जियाँ आदि।

प्रतिरोपित अथवा शीर्ष से बीज उत्पादन : इस विधि के अन्तर्गत तैयार सब्जियों के रूपान्तरित अंगों जैसे– फूल गोभी में फूल, पत्ता गोभी में पत्तियों का समूह, गाँठ गोभी में तना तथा मूली, गाजर, शलजम और चुकन्दर में जड़ों का उपयोग दूसरे स्थान पर प्रतिरोपित कर बीज तैयार किया जाता है।

पौध सरंक्षण : बीजोत्पादन में पौध संरक्षण का विशेष महत्व है। बीजों की बुवाई से लेकर बीजों को पैक करने से पहले तक तथा भण्डारण समय में सुरक्षित रखने हेतु कीटनाशी व फफूदंनाशी दवाओं का उपयोग करना चाहिए। पौध सरंक्षण के अन्तर्गत कीटनाशकों का उपयोग सन्तुलित मात्रा में किया जाना चाहिए। अधिक प्रयोग से परागणकर्ताओं की क्रिया विधि पर विपरित प्रभाव पड़ता है।

कटाई, तुड़ाई एवं बीज निष्कर्षण : अलग–अलग सब्जियों में बीज परिपक्वता के लक्षण भिन्न होते हैं। पूर्णरूप से परिपक्व फलियों व फलों की तुड़ाई कर उचित विधि द्वारा बीजों का निष्कर्षण करना चाहिए।

बीजों की सफाई : बीजों की भौतिक शुद्धता बनाये रखने के लिए बीजों में उपस्थित छिलका, डंठल, कच्चे व टूटे–फूटे बीजों एवं अन्य दूसरे पदार्थों को अलग कर देना चाहिए।

बीजों को सुखाना : बीजों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने तथा अंकुरण क्षमता को बनाये रखने के लिए बीजों को उपयुक्त तापमान पर निर्धारित नमी बिन्दू तक सुखाना चाहिए। बीजों में नमी की मात्रा अधिक होने पर फफूँद लग जाती है तथा बीज सड़कर खराब हो जाते हैं। इससे बीजों की अंकुरण क्षमता घट जाती है।

श्रेणीकरण : बीजों की भौतिक शुद्धता अच्छी करने के लिए कटे–फटे, छोटे व अतिरिक्त बड़े विकृत बीजों को अलग करके समान आकार के स्वस्थ बीजों का श्रेणीकरण करना चाहिए।

बीज परीक्षण : बीजों की अंकुरण एवं ओज क्षमता ज्ञात करने के लिए उचित विधि से अंकुरण प्रतिशतता की जाँच कर निश्चित मानक तक अंकुरण क्षमता वाले बीजों की पैकिंग करनी चाहिए।

बीजोपचार : भण्डारण अवस्था में बीजों पर लगने वाले कीट व रोगों से बचाने के लिए कीटनाशी तथा फंफूदनाशी दवाओं से उपचारित करना चाहिए।

पैकिंग : बीजों की पैकिंग संग्रहण और वितरण के उद्देश्य से की जाती है। सब्जियों के बीज की पैकिंग में अपेक्षाकृत छोटे पैकेट की आवश्यकता होती है। पैकेट तैयार करने के लिए मोटे कागज, दफ्ती, पॉलीथिन, जिंक या पॉलीथिन, कलई–युक्त कागज, मोटा कपड़ा तथा टिन का उपयोग किया जाता है पैकिंग वायुरोधक होनी चाहिए।

1. टिन के डिब्बे : फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी, भिंडी, प्याज शलजम।

2. कपड़े के थैली में : मटर, सेम, प्याज, ग्वार फली, फ्रेंच बिन, गाजर, पालक।

3. कागज के पैकिंग (जिनके आन्तरिक भाग में पॉलीथिन या धातू की पर्त चढ़ी हुई रहती है) : टमाटर, बैंगन, मिर्च, कद्दूवर्गीय सब्जियाँ, भिंडी, शलजम, मूली, गाजर, चुकन्दर, फूलगोभी, प्याज, पत्तागोभी आदि।

तालिका : 2 विभिन्न सब्जियों के बीज मानक प्रतिशत

फसल	बीज का प्रकार	शुद्ध बीज (न्यूनतम)	अक्रिय पदार्थ (अधिकतम)	अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	खरपतवार के बीज (अधिकतम)	अंकुरण (न्यूनतम)	नमी (अधिकतम)	वाष्प रोधी पात्रों के लिए नमी (अधिकतम)
टमाटर	आधार बीज	98.0	2.0	0.05	0.00	70.0	8.0	6.0
	प्रमाणित बीज	98.0	2.0	0.10	0.00	70.0	8.0	6.0
बैंगन	आधार बीज	98.0	2.0	0.00	0.00	70.0	8.0	6.0
	प्रमाणित बीज	98.0	2.0	0.00	0.00	70.0	8.0	6.0
मिर्च	आधार बीज	98.0	2.0	0.05	0.05	60.0	8.0	6.0
	प्रमाणित बीज	98.0	2.0	0.10	0.10	60.0	8.0	6.0
भिण्डी	आधार बीज	99.0	1.0	0.00	0.00	65.0	10.0	8.0
	प्रमाणित बीज	99.0	1.0	0.05	0.00	65.0	10.0	8.0
प्याज	आधार बीज	98.0	2.0	0.05	0.10	70.0	8.0	5.0
	प्रमाणित बीज	98.0	2.0	0.05	0.20	70.0	8.0	5.0
मूली/शलजम	आधार बीज	98.0	2.0	0.05	0.10	70.0	6.0	5.0
	प्रमाणित बीज	98.0	2.0	0.10	0.20	70.0	6.0	5.0

गेलार्डिया की व्यावसायिक खेती

अशोक चौधरी, आशुतोष मिश्रा, राजेश चौधरी, मनीषा धायल एवं सुरेश कुमार जाट
जी. बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर एवं कृषि विश्वविद्यालय कोटा

मानव जीवन में फूलों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। फूलों की सुन्दरता मनुष्य को अपनी और आकर्षित करती हैं। मानव जीवन में सुन्दरता, प्रेम और धैर्य के प्रतिक माने जाते है। राजस्थान मे फूलों का उत्पादन दूसरे राज्य की तुलना मे बहुत कम हैं। एक सर्वे से पता चलता हैं की राजस्थान मे केवल 2.5 हजार हैक्टेयर क्षेत्रफल पर फूलों की खेती की जाती हैं। जिससें मात्र 2.7 हजार मैट्रिक टन फूलों का उत्पादन होता है। राजस्थान में फूलों की खेती की बहुत ज्यादा संभावनाएं हैं ऐसे में किसान भाई अगर अन्य फसलों के साथ–साथ फूलों की खेती करे तो वर्ष भर अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। प्रदेश में गेंदा, गुलदाउदी, गुलाब, जैसमीन तथा गैलार्डिया की सफलतापूर्वक खेती की जा सकती हैं। जिनमें से गेंदा सभी पुष्पों से अधिक आमदनी देने वाला तथा सरल खेती की श्रेणी मे आता हैं। मौसमी पुष्पों में गेलार्डिया एक महत्वपूर्ण पुष्प है। यह गर्मी, बरसात व सर्दी तीनों ही मौसम में आसानी से उगाया जा सकता है। फरवरी–मार्च में बुवाई करने पर फूल गर्मियों में, मई–जून में बुवाई करने पर बरसात में और सितम्बर–अक्टूबर में बुवाई करने पर सर्दियों में फूल आते हैं।

जलवायु एवं भूमि : गेलार्डिया की अच्छी उपज के लिए खुली धूप वाली जगह और उचित वायु संचार, गहरी मृदा, उपयुक्त जल– धारण क्षमता तथा 6.0–8.0 पी. एच. मान वाली भूमि मे अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

प्रजातियाँ एवं किस्में : इसकी दो मुख्य प्रजातियाँ हैं।
गेलार्डिया पिक्टा : इसमें बड़े आकार के पुष्प आते हैं।
गेलार्डिया लोरेन्जियाना : इसमें फूल पंखुड़ियों वाले, विखंडित कोरों व एक ही पुष्प में कई आकर्षक रंगो मे डबल पुष्प आते हैं। लोरेन्जियाना की प्रमुख किस्में सनशाइन, स्ट्रान और गेटी डबल मिक्सड हैं। एक संकर किस्म टेट्रा फिस्टा हाल ही में विकसित की गई है। इसमें फूल डबल आकार में बड़े और पंखुड़ियाँ चमकीली लाल रंग की पीले किनारों वाली होती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें बड़े सिंगल फूलों वाली ग्रेन्डीफ्लोरा नामक कुछ बहुवर्षीय किस्में भी हैं।

बीजों की बुवाई एवं मात्रा : गेलार्डिया के पौधे देर से फूल देते हैं, बुवाई के साढ़े तीन से चार माह पश्चात् फूल आने लगते हैं। आवश्यकतानुसार बीज नर्सरी की क्यारियों में, लकड़ी के खोखों में, गमलों में, मिट्टी के तसलों में एवं प्लास्टिक ट्रे में बोये जा सकते हैं। बीज बोने से पूर्व किसी फफूंदीनाशी दवा जैसे थाइरम या बाविस्टीन आदि से उपचारित कर बोयें। बुवाई के 4 से 6 सप्ताह बाद पौध खेत में रोपाई के लायक हो जाती है। एक हैक्टर की रोपाई के लिए 500 से 600 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

गेलार्डिया की पौध तैयार करना : गेलार्डिया की पौध तैयार करने के लिये उपयुक्त भूमि का चुनाव किया जाता हैं तथा क्यारी भूमि की सतह से 10–15 सेमी ऊपर उठी होनी चाहिए जिससे वर्षा के पानी को बाहर आसानी से निकाला जा सके । 150 वर्ग मीटर नर्सरी का क्षेत्रफल एक हैक्टेयर के लिए पर्याप्त माना जाता हैं । इसके लिये क्यारियां 3 मीटर लम्बी, एक मीटर चौड़ी तथा 10–15 सेमी जमीन से ऊपर बनानी चाहिए। उसके बाद 30 किलोग्राम वर्मी –कम्पोस्ट या गोबर की खाद प्रति क्यारी के हिसाब से मिलावें तथा हल्की सिचाई कर दें ताकि खरपतवारो का अंकुरण फसल से पहले हो जाये तथा उनका नियंत्रण आसानी से किया जा सके । क्यारियों को कवकनाशी से उपचारित करें ताकि पौधो को कवक के प्रकोप से बचाया जा सके । कवकनाशी के लिये 2 ग्राम प्रतिलीटर पानी मे बाविस्टीन डाल कर छिडकाव करें । इसके बाद बीज की बुवाई करें जिसमे पौधे से पौधे की दूरि 3 सेमी तथा लाइन से लाइन की दूरि 5 सेमी रखें। बीज की गहराई 2 सेमी से ज्यादा नही होनी चाहिए और 5–7 दिन के बाद बीज का अंकुरण होना शुरू हो जाता हैं । नर्सरी मे पौधो को कीटो से बचाने के लिए 2 मिलीलीटर डाइमिथोएट (रोगोर) या 1.5 मिली लीटर इमिडाक्लोप्रिड प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करना चाहिए। जब पौधा 7–10 सेमी की ऊचाई का या 3–4 सप्ताह का या 4–5 पत्ती आने पर खेत के अन्दर स्थानान्तरण कर देना चाहिए। नर्सरी से खेत मे पौध का स्थानान्तरण शाम के समय करना चाहिए ताकि पौधा आसानी से खेत मे स्थापित हो जाये तथा स्थानान्तरण के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए।

खेत की तैयारी : खेत की 3 से 4 जुताई करें और पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। अंतिम जुताई के समय 10 से 13 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर की दर से भूमि में डालनी चाहिए। सिंचाई के लिए सुविधानुसार खेत में क्यारियाँ बना लेनी चाहिए।

पौध की रोपाई : गेलार्डिया के पौधों की रोपाई समतल क्यारियों में की जाती है। पौध की रोपाई 60 से.मी. लाइन से लाइन एवं 45 से.मी. पौधे से पौधे की दूरी रखकर करनी चाहिए।

सिंचाई एवं उर्वरक : गेलार्डिया में सही समय पर सिंचाई करने पर पुष्प खिलते रहते हैं। अतः भरपूर पुष्प लेने के लिए उर्वरकों का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। 200 किलो यूरिया, 400 किलो सुपर फास्फेट, 100 किलो म्यूरेट ऑफ पोटाश उर्वरक प्रति हैक्टर की दर से डालें। गोबर की खाद, सुपर फास्फेट व म्यूरेट ऑफ पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा व यूरिया की आधी मात्रा रोपाई के पूर्व डालें। यूरिया की शेष आधी मात्रा 45 दिन पश्चात् खड़ी फसल में दें। यूरिया डालने के बाद सिंचाई अवश्य करें।

निराई–गुड़ाई : इस फसल में दो तीन बार गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट करें। गुड़ाई करते समय पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ावें। समय–समय पर निराई–गुड़ाई कर खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें।

व्याधि प्रबंध : जड़ गलन रोग से पौधों की जड़ें सड़ जाती हैं। नियंत्रण हेतु केप्टान 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से भूमि को उपचारित करें।

फूलों की तुड़ाई एवं उपज : पौधों की रोपाई से 3 से 4 महीने बाद पुष्प खिलने शुरू होते हैं। पुष्पों की तुड़ाई समय पर करते रहना चाहिए। हर चौथे रोज पुष्पों की तुड़ाई करें जिससे आगे पुष्प निरंतर बनते रहें। पुष्प चुनते समय ध्यान रहे कि सभी पूर्ण विकसित पुष्प तथा डोडे पौधों पर छूटने न पायें। प्रति हैक्टर 100 से 150 क्विंटल पुष्पोत्पादन प्राप्त होगा।

पान का महत्व एवं इसकी वैज्ञानिक खेती

खजान सिंह, उदयभान सिंह, वर्षा गुप्ता, शंकर लाल यादव एंव मंजू मीना
कृषि महाविद्यालय, भरतपुर एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

महत्व : पान एक अद्भूत जड़ी–बूटी है, यह पीपरेसी कुल का पौधा है तथा वानस्पतिक नाम पाइपर बीटल है इसके फायदे निम्न प्रकार है।

पाचन में सहायक : पान खाने से मूंह में निकलने वाला तरल पदार्थ भोजन पाचन में सहायता करता है। पान के पत्ते भूख बढ़ाने में मदद करते है। पान के पत्ते चबाने से आपकी लार ग्रंथि की सक्रियता में सुधार होता है, इससे पाचन बहुत आसान हो जाता है साथ ही शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है।

खाँसी : पान के पत्तों को उबाल के उसको पीने से खाँसी खत्म हो जाती है।

शरीर की दुर्गन्ध : पान के पत्तों को उबाल के पीने से शरीर की दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है।

मुँह की बदबू : पान के पत्तों को चबाने और उबाल के उसके पानी से गरल करने से मुँह की बदबू समाप्त हो जाती है पान के पत्ते खाने से मुख शुद्ध होता है, पान के पत्ते तंबाकू, चुना, कत्था और सुपारी आदि लगाकर खाने के लिए उपयोग किये जाते है।

मुंहासे : पान के पत्तों को उबालें और उसको अपने मुँह पर लगाने से मुहासे दूर हो जाते हैं, पान की पत्तियों के रस में हल्दी मिलाकर मुंहासों पर या एलर्जी वाले स्थानों पर लगाने से यह समस्या खत्म होती है।

कामोत्तेजक : पान की पत्तियों का फायदा कामोत्तेजना में भी होता है। इरेक्टाइल डिस्फंक्शन की समस्या होने पर 1 चम्मच केसर, इलायची, सूखे हुआ नारियल के टुकड़े, किशमिश और मिश्री को पान के पत्ते में बांधकर भोजन के बाद लेने से यह समस्या दूर हो सकती है।

कैंसर : पान के पत्तों को चबाने से ओरल कैंसर जैसी बीमारी से बचा जा सकता है।

शुगर : पान की पत्तियों के अर्क का नियमित सेवन ब्लड शुगर के लेवल को कम कर सकता है, यह शरीर की उपापचय क्रिया को तेज करता है व मोटापा कम करने में सहायक होता है।

उपचार : चोट लगने पर इसका लेप बनाकर पट्टी की जाती है। इसमें पाए जाने वाले औषधीय गुणों के कारण संक्रामक एवं गैर संक्रामक रोगों जैसे जुकाम, खांसी, दमा, गठिया, जठरारति, मुंह की दुर्गन्ध, कब्ज, मसूड़ों का फूलना व नेत्र श्लेष्मला शोथ आदि अनेक प्रकार के रोगों में पान के पत्तों का विशेष महत्व है। इसमें विटामिन, थाइमिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, कैरोटीन, कैल्शियम और बहुत सारे लाभदायक पदार्थ प्रचुर मात्रा में मौजूद होते हैं। पान के पत्तों को एक अच्छा मूत्रवर्धक भी माना जाता है, पान के पत्ते नियमित सेवन करने से एसिडिटी की समस्या में राहत मिलती है, इसका सेवन करने के लिए इसकी पत्तियों को मैश कर लें और रातभर के लिए पानी में रखें, अगली सुबह इसी पानी का सेवन करने से कब्ज से राहत मिलती है। यही नहीं पान के पत्ते का रोगाणुरोधी गुण आपकी त्वचा को संक्रमण से भी बचाता है। यह एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर होते है जो हमारे शरीर से फ्री रेडिकल को दूर करते है और शरीर में पीएच लेवल को सामान्य करते है, इसका उपयोग कई धार्मिक प्रयोजनों के साथ–साथ भी किया जाता है।

पान एक बहुवर्षीय बेल है। इसकी खेती के लिए अपेक्षाकृत अधिक श्रम की जरुरत होती है तथा छोटी जोत वाले किसानों के लिए उपयुक्त है। राजस्थान में पान की खेती भरतपुर, करौली, चितौडगढ, उदयपुर, बांसवाडा, पाली और झालावाड जिलों में की जाती है। करौली का मासलपुर व भरतपुर का खरैरी बागरैन गॉव पान की खेती के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ तमौली जाति के लोग देशी तरीके से जैविक पान की खेती करते है, जिसका जायका अलग है तथा अच्छी गुणवत्ता वाला माना जाता है।

पान की खेती

मिट्टी एवं जलवायु : पान के लिए उचित जल निकास वाली चिकनी व दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश पदार्थ की अधिक हो, उपयुक्त रहती है। पान की खेती के लिए गर्म एवं तर जलवायु व छायादार स्थान उपयुक्त हैं। इसके लिए अधिक वर्षा व वातावरण में अधिक नमी चाहिए।

प्रजातियां : देशी पान, खासी, देशावरी, बनारसी, कलकत्तई, महोबाई, मगही, बंगला आदि लोकप्रिय किस्में है। राजस्थान में मुख्यतः दशावरी व देशी पान किस्में लगायी जाती हैं।

प्रवर्द्धन : पान के पौधे कलम से तैयार किये जाते है। कलम के लिए एक साल पुरानी बेल उपयुक्त रहती है। पान की बेल का ऊपरी 30 से 40 सेमी भाग जिसमें 6–7 कलिकाएं हों 2–3 कलिकाओं को जमीन में दबाकर शेष को जमीन से ऊपर रखें। पान की बेल के नीचे का हिस्सा (3–4 कलिका) कलम के लिए प्रयोग नही करें। कलम को फफूँदींजनित रोगों से बचाव के लिए 0–5 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण या 500 पी.पी.एम. स्ट्रेप्टोमाइसिन के घोल में 15–20 मिनट तक उपचारित करें।

भूमि की तैयारी : भूमि की 4–5 जुताई करके भुरभुरी बनाये तथा पाटा लगा दें। तैयार जमीन पर तालाब की चिकनी मिट्टी डालकर आसपास की जमीन से 8–10 से.मी. ऊंचा कर लें और जमीन में दो तरफ ढाल दें ताकि जल निकास की समस्या न रहे।

भूमि उपचार : पान की खेती के लिए भूमि का सौर उपचार किया जाता है। गर्मी के दिनों में मिट्टी को अच्छी तरह नम करके पॉलीथीन अथवा कूडे करकट से ढंककर कुछ दिन के लिए छोड दिया जाता है। इससे मिट्टी में पनपने वाले हानिकारक फफूँद अथवा जीवाणु मर जाते है। भूमि उपचार के लिए 0.5–1.0 टन नीम की खली प्रति हैक्टर भी उपयोग किया जाता है।

बरेजा का निर्माण : पान की खेती के लिए हल्की ढालदार जमीन पर बरेजा बनाये जाते है। बरेजा के लिए स्थानीय स्तर उपलब्ध बांस, पत्थर, फूँस आदि का प्रयोग किया जाता है। बरेजा वर्गाकार अथवा आयताकार 2 से 2.5 मीटर ऊंचा बनाया जाता है। खेत के चारों और खण्डे अथवा पत्थर की दीवार बनायी जाती है अथवा सरकण्डे व फूँस की दीवार भी बना सकते हैं। दीवार के पास 0.5 से 1.0 मीटर का रास्ता रखा जाता है। बरेजा का ऊपरी हिस्सा घास, फूँस अथवा नारियल व खजूर की पत्तियों के छप्पर से ढक दिया जाता है। बरेजा के पास सिंचाई का साधन होना चाहिए तथा बरेजा की जमीन आस–पास की जमीन से ऊंची हो ताकि जल निकास आसानी से हो जाय।

पौधरोपण : वर्षा ऋतु की शुरुआत पौध रोपण हेतु सर्वाधिक उपयुक्त है। बरेजा में रोपण हेतु 100000–120000 कलम प्रति हैक्टर की

आवश्यकता होती है। सामान्यतः कतार से कतार की दूरी 50–60 से. मी. व पौधे से पौधे की दूरी 15–20 से.मी. रखते हैं। जहाँ पान की खेती सहजन, सेसबानियां आदि पौधों पर चढाकर की जाती है, वहॉ 40000 से 75000 कलमों की आवश्यकता होती है।

सधाई व कृन्तन : बरेजा में बांस अथवा लकडी के सहारे घास से बांधकर चढाया जाता है अथवा सहारा देने वाले पौधों जैसे सहजन पर बांधकर चढाया जाता है। बेलों को 20 से 30 सेमी के अन्तराल पर बांधकर 2. 2 मीटर तक चढाया जाता है ताकि बरेजा की छत को छू सके। बाद में नीचे की पान की पत्ती तोडकर केवल ऊपर की 4–6 पत्ती छोडकर बेल को नीचे आने देते हैं।

खाद एवं उर्वरक : 200 किग्रा प्रति हेक्टेयर नत्रजन प्रति वर्ष 1:1 (कार्बनिक व अकार्बनिक) पौध लगाने के दूसरे महीने से प्रारम्भ कर 2–3 महीने के अन्तराल पर वर्ष में 4–5 बार दिया जाता है। 100 किग्रा./है. फास्फोरस व पोटाश दिया जाता है। गोबर की खाद 25 टन तथा अरण्डी, अलसी, तिल अथवा नीम की खली खाद के रुप में 15 क्विं/है. दी जाती है। खली को मिट्टी के बडे मटके में पानी के साथ 6–8 दिन तक सडाया जाता है तथा इस खली की स्लरी को बेलों में दिया जाता है। वर्षा ऋतु में खली का चूर्ण भी प्रयोग किया जा सकता है।

सिंचाई : पान की खेती के लिए मिट्टी में लगातार नमी बने रहना जरुरी है। अतः ऋतु एवं मिट्टी की बनावट के अनुसार बार–बार हल्की सिंचाई की जरुरत होती है। खुली नाली से गहरी सिंचाई हानिकारक होती है। बूँद–बूँद सिंचाई लाभदायक हो सकती है।

खरपतवार नियंत्रण : पान के खेत में समय–समय पर निराई–गुडाई करते रहें। खेत में अनावश्यक खरपतवार सावधानी से निकाल दें तथा पौधों की जडों पर मिट्टी चढा दें।

कीट नियंत्रण

तनाछेदक : प्रभावित स्थान पर परिगलित भूरा धब्बा दिखाई देता है मुख्य तना में सुरंग बना लेते हैं पौधा सूख जाता है इनके नियंत्रण हेतु जुलाई अगस्त में प्रकाश ट्रैप लगायें व मोनोक्रोटोफॉस 0.05 प्रतिशत का दो बार छिड़काव करें निबोली सत्व का 5 प्रतिशत या नीम के तेल का 2 प्रतिशत से मृदा मज्जन (soil drenching) करें।

पान की बग : पत्तियां सिकुड जाती हैं। पत्तियों पर छोटे भूरे धब्बे हो जाते हैं। इनके नियंत्रण हेतु तम्बाकू काढ़े का 2 प्रतिशत या 0.05 प्रतिशत नीम के तेल का छिड़काव करें।

पत्ती खाने वाले कीट : तम्बाकू केटरपिलर पत्तियों पर छेद कर देते हैं। इनके नियन्त्रण हेतु प्रति हेक्टयर 10 फेरोमेन ट्रैप जुलाई से अक्टूबर में लगायें व नीम के तेल का 0.05 प्रतिशत का छिडकाव करें। पान की फसल पर सूक्ष्म लाल मकडी, शल्क कीट व सफेद मक्खी का प्रकोप होता है। ये कीट पत्तियों का रस चूसते हैं। इनके प्रभाव से बेल का बढना बंद हो जाता है, जिससे पान के पत्ते सूख जाते है। इसमें पैदावार पर बडा कुप्रभाव पडता है। इन सभी कीटो की रोकथाम के लि, 0.1 प्रतिशत मेलाथियान 50 ईसी अथवा 0.05 प्रति ात नीम के तेल का छिडकाव करें।

रोग नियंत्रण

कॉलर रोट रोग : यह रोग *स्क्लेरोशियम रॉल्फसाई* फफूँदी से होता है। बेल भूमि की सतह से गल जाती है मुरझा जाती है व मर जाती है जल निकास की उचित व्यवस्था करें। बेलों पर बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत या मैंकोजेब 0.3 प्रतिशत घोल का महीने में एक बार छिडकाव करें। बोर्डो मिश्रण 1 प्रतिशत का 1 लीटर प्रति रनिंग मीटर की दर से मृदा अवज्जन दो बार करें।

पत्ती व पादगलन (Leaf and Foot rot) : पान में लगने वाला यह रोग *फाइटोफथोरा केप्सिसि* नामक फफूँदी से होता है। पत्तियों पर गोल भूरे परिगलित धब्बे बन जाते हैं पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं व गिर जाती हैं सतह के पास तने का रंग काला भूरा हो जाता है जड़ें गल जाती हैं जल निकासी अच्छा न होने से यह रोग तेजी से फैलता है। इस रोग से बचाव के लिए पहले जल निकास दुरस्त करें जमीन पर गिरी हुइ पान की पत्तियों को साफ करें। साथ ही खेत की तैयारी के समय 2.5 किग्रा ट्राइकोडर्मा पाउडर गोबर की खाद में मिलाकर एक हैक्टर में डालें। दो वर्ष में एक बार ज्वार या मक्का के साथ फसल चक्र अपनायें बोर्डो मिश्रण 1 प्रतिशत का 1 लीटर प्रति रनिंग मीटर की दर से मृदा अवज्जन दो बार करें।

पत्ती का धब्बेदार और तने का एंथ्रेक्नोज रोग : यह एक फफूँद जनित रोग है जो कि कोलेरोट्रोइकम केपसीसी नामक फफूँद से होता है। इस रोग का प्रकोप बरसात में अधिक होता है। इस रोग के शुरुआत में पत्तियों के किनारों पर धंसे हुये अनियमित टेढे–मेढे गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में काले रंग में बदल जाते है। इसके बचाव के लिए 0.3 प्रतिशत कश्वपर ऑक्सीक्लोरॉइड अथवा मेंकोजेब घोल का छिडकाव बरसात में 20–25 दिनों के अन्तराल पर करें।

तना कैंसर : इसके प्रकोप से तने में लम्बे–लम्बे भूरे धब्बे बन जाते है जो धीरे–धीरे बढने लगते है व तना फट जाता है। इसके बचाव हेतु बीजीय बेलों को 0.5 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण तथा 500 पीपीएम स्ट्रेप्टोमाइसिन का 15 से 30 मिनट उपचार करें 150 ग्राम प्लांटोबाइसिन व 150 ग्राम कॉपर सल्फेट 600 ली. पानी में घोल बनाकर एक हैक्टर में छिडकाव करें।

चुरणिल आसिता : यह रोग अश्वइडियम नामक फफूंद द्वारा होता है पत्तियों की सतह पर छोटे छोटे पाउडरी पैच दिखाई देते हैं रंग पीला पड़ जाता है तद्परान्त लाल होने लगता है व पत्तियां सूखने लगती है इसके उपचार हेतु 0.3 प्रतिशत गीली गंधक का 15 दिन के अंतराल से छिड़काव करें।

पान की जडों में गांठे बनना : यह सूत्रकृमि रोग है। जिसके लिए मेलोयडोगायनी नामक सूत्रकृमि जिम्मेदार है। इसमें जडों में गांठे बन जाती है व पत्तियाँ छोटी रह जाती है व बेलों की बढवार भी रुक जाती हैं, पत्तियां पीली पड जाती हैं, बाद में सूख जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए नीम की खली 15–20 किग्रा प्रति 100 मीटर पर प्रयोग करें।

पान की पत्ती तोडना : सामान्यतया रोपाई के दो से तीन महीने में पान की पत्तियां तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती है उसके बाद प्रत्येक 25 से 30 दिन में पत्तियों की तुड़ाई की जाती है। पान की परिपक्व पत्तियों को डंठल सहित तोडा जाता है, पत्तियों को अच्छी तरह धोकर आकार एवं गुणत्ता के हिसाब से श्रेणीकरण करके बंडल बना लिए जाते है। 60–80 लाख पान की पत्तियाँ प्रति हैक्टर एक वर्ष में तोडी जाती है। पान की खेती एग्रोनेट में बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति का प्रयोग करके आधुनिक तरीके से करना ज्यादा लाभदायक हो सकता है।

खीरा की उन्नत खेती

सरिता, सोमदत्त एवं राकेश कुमार बैरवा
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

खीरा कद्दूवर्गीय कुल का पौधा है, खीरा की उत्पत्ति भारत से ही हुई है और लता वाली सब्जियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसके फलों का उपयोग मुख्य रूप से सलाद के लिए किया जाता है। इसके फलों के 100 ग्राम खाने योग्य भाग में 96 प्रतिशत जल, 2–7 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0–4 प्रतिशत प्रोटीन, 0–1 प्रतिशत वसा और 0–4 प्रतिशत खनिज पदार्थ पाया जाता है। इसके अलावा इसमें विटामिन बी की प्रचुर मात्राएँ पाई जाती हैं। खीरे में पर–परागण होता है।

जलवायु : इसकी खेती के लिए सर्वाधिक तापमान 40 डिग्री सेल्शियस और न्यूनतम 20 डिग्री सेल्शियस होना चाहिए। अच्छी बढ़वार तथा फल–फूल के लिए 25 से 30 डिग्री सेल्शियस तापमान अच्छा होता है। अधिक वर्षा, आर्द्रता और बदली होने से कीटों व रोगों के प्रसार में वृद्धि होती है। अधिक तापमान और प्रकाश की अवस्था में नर फूल अधिक निकलते हैं, जबकि इसके विपरीत मौसम होने पर मादा फूलों की संख्या अधिक होती है।

भूमि : अच्छे जल निकास वाली दोमट एवं बलुई दोमट भूमि उत्तम मानी जाती है। खीरा की खेती के लिए भूमि का पी एच 5.5 से 6.8 तक अच्छा माना जाता है। नदियों की तलहटी में भी इसकी खेती अच्छी की जाती है। यह पाले को सहन नहीं कर पाता, इसलिए इसको पाले से बचाकर रखना चाहिए।

खेत की तैयारी : खीरे की खेती के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करे। उसके बाद 2–3 बार कलटिवेटर या हैरो से जुताई करे, मिट्टी को भुरभुरी व समतल बनाने के लिए लिए हर जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाए। पॉलीहाउस में बीज उत्पादन अच्छा होता है क्योकि पॉलीहाउस में संरक्षित खेती की जाती है और खरपतवार, रोग, कीट का अच्छा प्रबंधन होता है।

बुआई का समय : मुख्य फसल के रूप में मैदानी क्षेत्रों में बुआई फरवरी से जून के प्रथम सप्ताह में करते हैं। दक्षिण भारत में इसकी बुआई जून से लेकर अक्टूबर तक करते हैं, जबकि उत्तर भारत के पर्वतीय भागों में इसकी बुआई अप्रैल से मई में की जाती है। गर्मी की फसल को जल्दी लेने के लिए पालीथीन या प्रो–ट्रे की थैलियों में जनवरी में पौध तैयार कर फरवरी में रोपण करते है।

बीज की मात्रा व बीज उपचार : बीज हमेशा प्रमाणित संस्था या सरकारी संस्थान से ही लेना चाहिए। रोग रहित अच्छी उन्नत किस्म वाले 2.5–3.0 किलोग्राम/हेक्टेयर बीज की जरूरत होती है। बुवाई से पहले बीज को कुछ घंटो तक भिगोएँ, जिससे अंकुरण अच्छा हो।

बुआई की विधि : इसमें मेढ़ से मेढ़ की दूरी 1 से 1.5 मीटर रखते है। जबकि पौधे से पौधे की दुरी 60 सें.मी. रखते हैं। बिजाई करते समय एक जगह पर कम से कम दो बीज लगाएं।

उन्नत किस्में : शीतल, कल्याणपुर ग्रीन, हिमांगनी, खीरा–90, खीरा–75, प्रिया, पूसा संयोग, स्वर्ण शीतल, स्वर्ण पूर्णा, पूसा उदय, स्ट्रेट 8, पोईंसेट, जापानीज लौंग ग्रीन प्रमुख किस्में है।

खाद व उर्वरक : खीरा की खेती के लिए 15 से 20 टन गोबर की गली सड़ी खाद या कम्पोस्ट के साथ–साथ 80 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस और 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर देना चाहिए । खेत में बुवाई के समय 1/3 नाइट्रोजन, फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा पोटाश की पूरी मात्रा डाल दे। बची हुई नाइट्रोजन को दो बार में बुवाई के एक महीने बाद व फूल आने पर खेत की नालियों में डाल कर मिट्टी चढ़ा दें।

सिचाई प्रबंधन : बुआई के समय खेत में नमी पर्याप्त मात्रा में रहनी चाहिए अन्यथा बीजों का जमाव एवं वृद्धि अच्छी प्रकार से नही होती है। बरसात वाली फसल के लिए सिचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। औसतन गर्मी की फसल को 5 दिन और सर्दी की फसल को 10 से 15 दिनों पर पानी देना चाहिए। तने की वृद्धि, फूल आने के समय और फल की बढ़वार के समय पानी की कमी नहीं होनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : अंकुरण से लेकर प्रथम 20 से 25 दिनों तक खरपतवार फसल को ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं। इससे फसल की वृद्धि पर प्रतिकूल असर पड़ता है और पौधे की बढ़वार रूक जाती है। इसलिए खेत में समय–समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए। पेंडीमेथालीन की 3.3 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिडकाव बुवाई के एक–दो दिन के अन्दर करना चाहिए जिससे की खरपतवारों का जमाव न हो सके।

रोग नियंत्रण

- आर्द्र विगलन, मृदुरामिल आसिता की रोकथाम हेतु मैन्कोजेब फफूंदनाशी 625 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
- चूर्ण फफूंदी रोग की रोकथाम हेतु घुलनशील सल्फर 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

कीट नियंत्रण

- **एफिड** : इसकी रोकथाम हेतु इमिडाक्लोरफिड 1 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए।
- **फल मक्खी :** इसके नियंत्रण हेतु एसीफेड 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- **लालमकड़ी :** इसकी रोकथाम हेतु घुलनशील सल्फर 3 ग्राम प्रति पानी की दर से छिड़काव करें।

फलों की तुड़ाई : खीरा के फल कोमल एवं मुलायम अवस्था में तोड़ने चाहिए। फलों की तुड़ाई 2 से 3 दिनों के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। समय पर फल तुड़ाई से पैदावार में बढ़ोतरी पाई गई है।

उपज : किसी भी फसल की पैदावार भूमि की उर्वरा, फ़सल की क़िस्म, फ़सल की देखभाल पर निर्भर करती है । वैसे अगर खीरे की फ़सल की अच्छी देखभाल की जाए तो सामान्यतः 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज ली जा सकती है।

बदलते कृषि परिवेश में जैविक प्रमाणिकरण की अनिवार्यता

कुमुद शुक्ला, मनमीत कौर, सूर्या राठौड़, एवं दीक्षा शर्मा
बायोवेद कृषि प्राद्योगिकी एवं विज्ञान शोध संस्थान, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर,
भा.कृ.अनु.प–राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंधन अकादमी, हैदराबाद एवं स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

पिछले 10–15 वर्षो से यह सिद्ध हो चुका है कि जैविक खेती विशेषकर सीमांत और छोटे किसानों को आर्थिक और सामाजिक लाभ पहुंचा रही हैं। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के आंकड़ों के अनुसार कई विकासशील देशों (जिसमें भारत भी शामिल है) का बहुत सा खेती का क्षेत्र आज भी परंम्परात खेती पर ही निर्भर है जो कि रासायनिक पदार्थो से मुक्त है। ऐसे क्षेत्रों को जैविक खेती के लिये उपयोग में लाना और उनके उत्पादों का विपणन करना जरूरी है जिसके लिये जैविक उत्पादों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिये जैविक प्रमाणीकरण की आवश्यकता होती हैं। आज का उपभोक्ता अपने स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति जागरूक है। वह स्वयं व अपने परिवार को स्वस्थ भोजन देना चाहता है। इसलिये वह जैविक उत्पादों के लिये अच्छे दाम भी देने के लिये तैयार है। बस जरूरत है तो सही जैविक प्रमाणीकरण की जिससे जैविक किसानों और उपभोक्ताओं के बीच विश्वास बना रहे। जैविक प्रमाणीकरण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत मान्यता प्राप्त जैविक प्रमाणीकरण संस्थाओं द्वारा जैविक उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं जैसेः उत्पादन, प्रसंस्करण, भण्डारण आदि का राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय जैविक मानकों के आधार पर निरीक्षण करने के उपरांत किसानों को 'प्रमाणित जैविक खेती/उत्पाद' का प्रमाण पत्र दिया जाता है। जैविक उत्पाद उगाने वाला किसान 'प्रमाणित जैविक उत्पादक किसान' कहलाता है।

भारत में जैविक खेती प्रमाणीकरण

भारत एक ऐसा विकसित देश है जिसने विश्वसनीय थर्ड पार्टी प्रमाणीकरण प्रणाली को विकसित किया है। भारत में जैविक खेती का प्रमाणीकरण वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के तहत 'द नेशनल प्रोग्राम फार ऑर्गेनिक प्रोडक्शन' (एन.पी.ओ.पी) द्वारा नियंत्रित किया जाता है। एन.पी.ओ.पी. को वर्ष 2000 में जैविक उत्पादों के निर्यात के लिये स्थापित किया गया और यह 2006 से जैविक उत्पादों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के क्षेत्र में कार्य कर रहा है। एन.पी.ओ.पी. (इंडिया ऑर्गेनिक) भारतीय लोगो को मान्यता के लिये जैविक उत्पादन, प्रणाली, मापदंड और प्रक्रिया के लिये मानक प्रदान करता है। लगभग ऐसी 30 प्रमाणीकरण संस्थाएं है जो कि जैविक उत्पादों को 'थर्ड पार्टी' प्रमाणीकरण के अन्दर प्रमाणिकता प्रदान करती हैं। जिनमें एस.पी.एस., इकोसर्ट, आइसर्ट, लेकोन आदि प्रमुख है। वर्ष 2008 तक लगभग 8.65 लाख हैक्टेयर क्षेत्र जिससे 7 लाख किसान जुड़े हैं, इस प्रणाली के अंदर प्रामाणिक हो चुके हैं। पहले जैविक प्रमाणीकरण की प्रक्रिया व्यक्तिगत रूप से शुरू हुई परंतु एक व्यक्ति द्वारा अपने खेत का प्रमाणीकरण करवाने में काफी खर्चा आता था । इस व्यय को कम करने लिये 2012 में भारत सरकार द्वारा 'पार्टिसिपेटरी गारंटी सिस्टम (पी.जी.एस.) को स्थापित किया या जिससे प्रक्रिया की जटिलता और व्यय को कम किया जा सके । इसमें कोई भी अनुभवी संस्था/संस्थान पी.जी.एस. के अर्न्तत किसानों को समूह में प्रमाणीकरण दिलाने में सहयोग कर सकता है।

प्रमाणीकरण कैसे?

प्रमाणीकरण हेतु आवश्यक दस्तावेज तैयार करने के बाद किसान या समूह का मुखिया प्रमाणीकरण हेतु अपने विकास खंड के सहायक खंड विकास अधिकारी (कृषि), मास्टर जैविक प्रशिक्षक जो कि खण्ड स्तर पर कार्यरत हो अथवा जैविक प्रमाणीकरण संस्थाओं से सम्पर्क कर सकता है।

जैविक समूही प्रमाणीकरण प्रक्रिया (पी.जी.एस.)

यह दो तरह से नियंत्रित होती है। आंतरिक नियंत्रण प्रणाली एवं बाह्य नियंत्रण प्रमाणीकरण संस्था द्वारा

आंतरिक गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली : जैविक उत्पाद का समूहों में प्रमाणीकरण हेतु आंतरिक मानकों के गठन, उनके जोखिमों के आंकलन के लिये, उनको नियंत्रित करने के लिये किसी संस्था/संस्थान द्वारा गुणवत्ता से युक्त् एक प्रणाली का गठन किया जाता है, जिसे आंतरिक गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली कहते हैं। यह आई.एफ.ओ.एम. और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विचार विमर्श के बाद जैविक प्रमाणीकरण के लिये नियमों को बनाता है। इस प्रणाली के अनुसार समूह प्रमाणीकरण हेतु मुख्य मानक निम्न है।

1. आंतरिक नियंत्रण प्रणाली का विस्तृत अभिलेख मौजूद हो।
2. प्रबंधन ढ़ांचे के दस्तावेज उपलब्ध होने चाहिये।
3. समूह के एक व्यक्ति को प्रबंधक के रूप में कार्य करना होगा।
4. एक आंतरिक नियमावली (उत्पादन, मानक, कन्वर्जन नियम, बदलाव के नियम, दंड के नियम आदि) तय होनी चाहिये जिसकी जानकारी सभी सदस्यों को हो।
5. जैविक खेती में बदली जाने वाले जमीन की कन्वर्जन नियमावली (पारम्परिक खेती, खेत का इतिहास इत्यादि) तय होनी चाहिये।
6. समूह एवं प्रमाणीकरण संस्था के बीच अनुबंध के पूर्ण दस्तावेज मौजूद होने चाहिये।
7. समूह द्वारा नियंत्रण प्रक्रियाओं हेतु आंतरिक इंस्पेक्टर चयनित होना चाहिये।
8. संचालक मंडल जैसे प्रबन्धक, इंस्पेक्टर तथा किसान को प्रशिक्षित होना चाहिये।
9. समूह के किसानो के अनुबंध पत्र के दस्तावेज मौजूद होने चाहिये।

10. प्रत्येक किसान के खेत का रिकॉर्ड व नक्शा मौजूद होना चाहिये।
11. वार्षिक निरीक्षण के मानक/ आवश्कताएँ तय होनी चाहिये।
12. किसान निरीक्षण रिकॉर्ड/ प्रपत्र मौजूद होने चाहिये।
13. एक एप्रूवल कमेटी का गठन होना चाहिये जिसे सदस्य को समूह मे जोड़ने व निकालने का अधिकार हो।
14. किसान–समूह की पूरी सूची उपलब्ध हो
15. आंतरिक कमियों के सुधार व निस्तारण की प्रक्रियायें स्पष्ट हो।
16. फसल कटने के बाद की उत्पादन चक्र प्रक्रिया, प्रोडक्ट पत्रों व उत्पादित मात्रा के दस्तावेज मौजूद हो।

जैविक प्रमाणीकरण हेतु मानक : जैविक प्रमाणीकरण हेतु निम्न मानकों का पालन हर सदस्य के लिये जरूरी है।

1. अपने खेतों में केवल पारम्परिक बीजों का प्रयोग करना होगा, अगली फसल के लिये अपने खेतों के बीज बचाने होगें तथा किसी भी प्रकार के संकर या जैव–यांत्रिक बीजों का प्रयोग मान्य नहीं है।
2. खेत में किसी भी प्रकार के रासायनिक पदार्थ/उर्वरक/कीटनाशक अथवा बाहरी अकार्बनिक पदार्थो का प्रयोग वर्जित है।
3. जैव–विविधता पर आधारित मिश्रित जैविक खेती करते हुये जैव–विविधता बढ़ानी होगी तथा फसल चक्र का अनुसरण करना होगा।
4. पानी एवं मिट्टी के संरक्षण एवं सतत् प्रयोग पर विशेष ध्यान देना होगा। मिट्टी का क्षरण रोकने व पोषकता बढ़ाने हेतु विशेष प्रयास करने होगें।
5. खेती में सिंचाई शुद्ध पानी द्वारा जैसे नलकूप, झरना, प्राकृतिक स्त्रोत व वर्षा के पानी से मान्य होगी। किसी भी प्रकार के प्रदूषित पानी का प्रयोग वर्जित होगा।
6. पानी एवं मिट्टी का दुरूपयोग एवं पशुओं के साथ अनैतिक व्यवहार अमान्य होगा।
7. खेतों में मिट्टी की पोषकता बढ़ाने हेतु केवल पूर्णता सड़ी हुई गोबर, कम्पोस्ट खाद, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवाश का प्रयोग ही मान्य है। किसी भी प्रकार की आधी सड़ी गली खाद व कचरे का प्रयोग वर्जित है।
8. जैविक उत्पाद का भंडारण केवल राष्ट्रीय जैविक मानकों द्वारा मान्य बर्तनों व थैली में करें।
9. खेत में पॉलिथीन अथवा अन्य किसी भी प्रकार के जैविक/अजैविक कचरे को जलाना निषिद्ध है।
10. खेती के दौरान किसी भी प्रकार का प्रदूषण पूर्णता वर्जित है। उदाहरण के लिये पास में मल–मूत्र का रिसाव, रासायनिक खेतों का जल बहाव इत्यादि।
11. लगातार तीन साल पूर्णता जैविक खेती करने पर ही खेत पूर्ण जैविक माना जायेगा।

आंतरिक नियंत्रण प्रणाली का स्वरूप : सामान्यतः किसी भी संस्था को आंतरिक नियंत्रण प्रणाली की स्थापना करने तथा उसके क्रियान्वयन करने हेतु निम्नलिखित कुशल एवं अनुभवी कर्मिकों की आवश्यकता होती है।

समूह प्रबंधक/गुणवत्ता नियंत्रक : यह आंतरिक नियंत्रण प्रणाली का प्रमुख पद है। जिसमे सम्बंधित संस्था के अंतर्गत जैविक कृषकों के प्रमाणीकरण एवं जैविक उत्पादों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने हेतु आंतरिक नियंत्रण प्रणाली की स्थापना कर उसके सफल संचालन एवं क्रियान्वयन हेतु इस प्रणाली के नियमों, मानकों को परिभाषित करना होता है।

आंतरिक निरीक्षक : आंतरिक नियंत्रण प्रणाली में आंतरिक निरीक्षक की केन्द्रीय भूमिका है। आंतरिक निरीक्षक समूह द्वारा नियत होते है व प्रत्येक कृषक के खेत, भंडार ग्रह, गौशाला व दस्तावेजों का शत–प्रतिशत अध्ययन करते हैं।

अनुमोदक कर्मचारी : आंतरिक गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली द्वारा सम्पन्न कराये जा रहे आंतरिक निरीक्षण के परिणामों तथा अन्य गतिविधियों के अनुमोदन हेतु एक समिति का गठन किया जाता है जिसे "जैविक अनुमोदन समिति " कहते हैं।

प्रसार कार्यकर्त्ता : प्रसार कार्यकर्त्ता जैविक कृषि प्रक्षेत्रों में ही रहते हैं। यह नियमित रूप से कृषि भूमि में जाते हैं व कृषको को जैविक कृषि सम्बन्धी आवश्यक सलाह एवं सहायता प्रदान करते हैं।

किसान स्तरीय दस्तावेज : इन दस्तावेजों का रखरखाव कृषको द्वारा किया जाता है। यदि कृषक ऐसा करने में असमर्थ हो तो प्रणाली के संचालक को उसके दस्तावेज तैयार करवाने में उसकी सहायता करनी चाहिये।

जैविक किसान डायरी : समस्त किसानों को एक सादी डायरी में या खास तौर पर समूह द्वारा तैयार डायरी में खेती के कामों से जुड़ी जानकारीयाँ अंकित करनी होती है। डायरी स्वयं किसान द्वारा या समूह के किसी व्यक्ति द्वारा भरी जाती है।

जैविक उपसमूह फार्म फाईल (कृषि क्षेत्र प्रपत्र) : यह दस्तावेज प्रसार कार्यकर्त्ता द्वारा भरा जाता है। इस दस्तावेज में उपसमूह के खेतों का वृहद् मानचित्र भी बनाया जाता है व समूह के सभी किसानों के खेतों व वहाँ जाने वाले रास्ते का मानचित्र तथा जैविक व रासायनिक खेतों का मानचित्र भी बनाया जाता है। निरीक्षण के दौरान निरीक्षक द्वारा इसका बारीकी से अध्ययन किया जाता है।

आंतरिक निरीक्षण : आंतरिक निरीक्षण के अंर्तत पंजीकृत शत–प्रतिशत कृषकों का प्रत्येक फसल चक्र में दो आंतरिक निरीक्षण किया जाना आवश्यक होता है। आंतरिक निरीक्षण फसल उत्पादन की उस अवस्था में

किया जाता है जिस समय सम्बन्धित मानकों के सापेक्ष अनुपालन के खतरे सबसे अधिक होते है। सामान्यतः यह अवस्थायें फसल की बोवाई/रोपाई अथवा कटाई या जब फसलों पर बीमारी एवं कीट का प्रकोप सबसे अधिक होता हो, के समय होती है।

बाह्य निरीक्षण : आंतरिक निरीक्षण की कार्यवाही पूर्ण होने के पश्चात प्रणाली के अंर्तगत पंजीकृत कृषक समूहों को जैविक उत्पाद हेतु प्रमाण–पत्र दिलाने के लिये यह आवश्यक है कि आंतरिक निरीक्षण प्रणाली का मूल्यांकन किसी बाह्य प्रमाणीकरण संस्था से कराया जाये। बाह्य निरीक्षण प्रमाणीकरण संस्था कई बार अनेक तरह के प्रश्न पूछते हैं जिनका सही जवाब देना चाहिये। ये खेत की मिट्टी व उत्पाद के नमूने जमा करते हैं। किसान सदस्यों को इस प्रक्रिया में सहयोग देना चाहिये ताकि कार्यप्रणाली का निरीक्षण कर प्रमाणीकरण संस्था को प्रमाण–पत्र जारी करने की सिफारिश की जा सके।

जैविक उत्पादों की बाजार व्यवस्था : जैविक उत्पाद के बाद खेत से खाने की मेज तक पहुँचाने में कई प्रक्रियाओं (अन्न को जमा करना, कटाई के बाद का प्रबंधन, अनाज की सफाई व पैकेजिंग, विपणन आदि) से गुजरना होता है। हर प्रक्रिया में उत्पाद की गुणवत्ता व उसे पूरी तरह जैविक बनाये रखना उत्पादक व पूरे समूह की जिम्मेदारी के साथ–साथ एक बड़ी चुनौती भी होती है। अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय व स्थानीय बाजार में जैविक उत्पादों की बडी मांग है। किसान अपनी खेती व उसके उत्पादों को पूरी तरह जैविक बनाकर उनका अच्छा दाम प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही साथ अपने स्वास्थ्य को भी बेहतर कर सकते हैं।

ट्रेसनेट : एपीड़ा द्वारा वर्ष 2010 से ट्रेसनेट व्यवस्था लागू कर दी ई है। जिसके तहत इंटरनेट की सहायता से समूह के सभी किसानो के खेत से भंडारण तक की सभी जानकारियाँ कम्प्यूटर द्वारा एक निश्चित प्रोग्राम के तहत भरी जाती है ताकि उत्पादन सम्बन्धी सारी जानकारियाँ आसानी से उपलब्ध हो व ट्रेसनेट के तहत समूह के पंजीकरण से प्रमाण–पत्र प्राप्त करने तक की सारी कार्यवाही इंटरनेट से प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार जैविक प्रमाणीकरण प्रणाली के माध्यम से छोटे किसान भी अपने जैविक उत्पादों को बाजार में उचित दाम पर बेच कर समुचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष : जैविक उत्पादों की मांग पूरी दुनिया में तेजी से बढ़ रही है परन्तु उस अनुपात से जैविक उत्पाद पैदा नहीं हो रहे हैं। विश्व में जैविक खेती उत्पादकों के मामले में भारत अभी प्रथम स्थान पर है जबकि जैविक क्षेत्र के मामले में विश्व में 9वें स्थान पर है। भारत के जैविक कृषि उत्पादों की मांग यूरोपीय संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, स्विट्जरलैण्ड, कोरिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी–पश्चिमी एशियाई देशों, मध्य पश्चिमी और दक्षिणी अफ्रीका में अधिक है। भारत वैश्विक स्तर पर जैविक उत्पादों का निर्यातक बन सके इसके लिये बेहद जरूरी है कि किसान जैविक खेती प्रमाणीकरण की प्रक्रिया को लेकर जागरूक बनें। और सेहत के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण के भी भागीदार बनें।

❋❋❋

नागफनी : शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में हरे चारे का उत्तम विकल्प

मोहन लाल जाट, बच्चू सिंह मीना, सुरेश कुमार बैरवा एवं भाग चन्द धायल
कृषि विज्ञान केन्द्र, करौली एवं कृषि महाविद्यालय, जोधपुर

पशुपालन व्यवसाय में पशुओं के पोषण में हरे चारे का महत्वपूर्ण स्थान हैं । परन्तु घटते जोत आकार के कारण पशु पालको को वर्ष पर्यंत हरा चारा उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती हैं। ऐसी परिस्थिति में कांटा रहित नागफनी "अपुन्सिया" का उपयोग पशुओं के खाने में हरे चारे के रूप में किया जा सकता हैं । खासकर देश के शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ पानी की अधिक कमी हो, अनियमित व कम वर्षा वाले क्षेत्र, लम्बे एवं शुष्क मौसम के साथ बार – बार पड़ने वाले सूखे तथा कम उपजाऊ मिट्टी वाले क्षेत्र में इसका उत्पादन आसानी से किया जा सकता है । शुष्क क्षेत्रो में पशु आहार तथा संसाधनों की काफी कमी रहती है तथा पशुओ के लिए पर्याप्त एवं गुणवत्तायुक्त आहार तथा चारे की आपूर्ति करना एक गंभीर समस्या है। इसके अलावा शुष्क क्षेत्रो में मानसून के बाद हरे चारे का उत्पादन करना चुनौती पूर्ण कार्य है। क्लैडोड (अंधकार तना) कहे जाने वाली 1–1 .5 सेंटीमीटर मोती गुदायुक्त पत्ती वाले पौधे का उपयोग हरे चारे के लिए किया जा सकता है नागफनी का उत्पादन एवं पशु चारे उपयोग करके हरे चारे की कमी एवं अभाव के दिनों में पशुओं को समुचित पौष्टिक हरा चारा उपलब्ध कराया जा सकता हैं ।

नागफनी के लिए खेत का चयन

नागफनी को उस स्थान, प्रक्षेत्र या खेत में उगाना चाहिये जहाँ आमतौर से अनाज या चारा फसलों को उगाना संभव न हो । इसे या तो मेंडो के किनारे बाड के रूप में उगाना चाहिए या कंकरीली पथरीली जगहों पर उगाना चाहिए। उपरोक्त क्षेत्रों के चयन से जहाँ एक ओर बाड़ से खेत को छुट्टा पशुओं से सुरक्षा मिलेगी वही दूसरी और नागफनी उगाने के लिए अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता नहीं होती।

नागफनी की बुवाई का समय व विधि

आमतौर से नागफनी की बुवाई वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में की जाती हैं, इस मौसम में जड़ो का विकास जल्दी व अधिक मात्रा में होता हैं । नागफनी की बुवाई (रोपाई) क्लैडोड (तने से निकाला चौड़ा भाग) के द्वारा करते हैं। तने से क्लैडोड को तोड़ कर 1 मीटर की दूरी पर मेड के किनारे 10–15 से.मी. का गड्ढा खोदकर जमीन में सीधे गाड़ देते हैं। तदोपरान्त कम नमी होने की दशा में सिंचाई करना उपयुक्त होगा ।

खेती के लिए कृषि क्रियाएँ

- शुष्क तथा अर्ध शुष्क जलवायु में चारा नागफनी लगाने के लिए बरसात या सूदयों के शुरुआत का मौसम (मध्य जून से मध्य जुलाई और मध्य अक्टूबर से मध्य नवंबर) आदर्श है।
- चारा नागफनी सबसे अधिक रेतीली तथा दोमट मिट्टी पर पनपता है। इसके अतिरिक्त विशेषकर तलहटी ढुलान, अधिक जल निकास वाली भारी मिट्टी तथा कंकरीली या पथरीली भूमि भी उपयुक्त है।
- भारत में कांटे रहित नागफनी की संस्तुत उपलब्ध किस्में; कैक्ट्स 1270, कैक्ट्स 1271 तथा टेक्सास 1308 हैं।
- सर्वप्रथम खेत को विभिन्न खरपतवारों जैसे कि मोथा, दूब घास, पारथेनिम, वार्षिक घासों से पूर्णतः मुक्त करे। इनको खत्म करने के लिए राऊडंअप (ग्लाईफोसेट) खरपतवार नाशक दवाई कां प्रयोग करें।
- पानी की उचित निकासी सुनिश्चित करने के लिए पौधे लगाने से पहले छेनी हल (चीजल हल) द्वारा खेत की 60–80 से.मी. तक गहरी जुताई करें। नागफनी के पौधे लगाने के 20 दिन पहले खेत में 15 टन प्रति हैक्टेयर की दर से अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद डालें।
- पौधें लगाने से एक सप्ताह पूर्व डिस्क हल, कल्टीवेटर तथा हैरो की मदद् से ऊपरी 30 सेमी. मिट्टी की सतह पर अच्छे से जुताई करके जमीन को खरपतवार मुक्त बनाएं। आखरी जुताई के समय जड़ को नष्ट करने वाले फफूंदी रोग को नियंत्रित करने के लिए मिट्टी में 1 .5 किग्रा.प्रति हैक्टेयर की दर से ट्राइकोडरमा विरिडी (जैव फफूंदीनाशक) मिलाएं।
- प्रति हैक्टेयर 90 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा फास्फोरस, 30 किग्रा. पोटाष तथा 10 किग्रा जिंक सल्फेट उर्वरकों का प्रयोग करें। पौधा लगाने से पहले मिट्टी में 30 किग्रा नाईट्रोजन तथा बाकी बचे उर्वरकों को अच्छी तरह मिलाएं। खड़ी फसल में एक वर्ष में 4 महीने के अंतराल पर 20 किग्रा नाइट्रोजन बराबर मात्रा में पौधों को दें।
- क्लैडोड या पौधों की रोपाई लाइनों के मध्य 100 सेमी तथा पौधों के मध्य 40 सेमी की दूरी पर करें। जलभराव की समस्या से बचने के लिए क्लैडोड या पौधों को एक फुट ऊची मेंड़ पर उत्तर–दक्षिण दिशा मे लगाएं।
- पौधा लगाने के लिए एक वर्ष का क्लैडोड या टिश्यू कल्चर के माध्यम से उगाए गए 7–8 महीने का पौधा उपयुक्त होता है।
- चारा कैक्टस में बैक्टीरिया तथा फंफूदी रोग के नियंत्रण के लिए ताजे क्लैडोड को प्रति लीटर पानी में 5 ग्राम की दर से कॉपर आधारित फफूंदीनाशक जैसे कॉपर आक्सीक्लोराइड (50% डब्ल्यू पी.) या कॉपर हाइड्रोऑक्साइड (77% डब्ल्यू.पी.) द्वारा उपचारित किया जाता है। पौधे को वृद्धि अवस्था के दौरान विशेषकर बरसात के मौसम में यदि कांटे रहित कैक्टस पौधों की जड़े नष्ट होती हैं, कमजोर पड़ जाती हैं और उनमें सड़न के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं, तो इस फफूंदीनाशी का छिड़काव किया जा सकता है।
- फफूंदीनाशी उपचार के बाद तथा पौधा लगाने से पहले, क्लैडोड को बेहतर जमाव के लिए दो सप्ताह तक छाया में फैलाकर रखा जाता है।
- क्लैडोड को लगाते समय एक तिहाई भाग मिट्टी के नीचे तथा दो तिहाई भाग मिट्टी के ऊपर रखते है। क्लैडोड या पौध के उचित रोपण के लिए पौधे के नजदीक सतह की मिट्टी को अच्छी तरह से दबाएं।
- रोपाई के तुरंत बाद पौधे की सिंचाई करें। बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली

के साथ–साथ प्लास्टिक पलवार (मल्व) द्वारा सिंचाई करने से जल उपयोग क्षमता तथा चारा उत्पादन में वृद्धि होती है।

- आवश्यकता पड़ने पर एवं मिट्टी में नमी की उपलब्धता होने पर फसल में हल्की सिंचाई करें। खेत से अतिरिक्त जल की निकासी करें। खेत को खतपरवारों से मुक्त रखें और पशु–पक्षियों द्वारा होने वाले नुकसान से बचाये।

कटाई /छंटाई

पौधे में एक मीटर की बढ़त होने पर पहली कटाई हाथ से करें। पहले दो वर्षो में, अंदर की तरफ वाले क्लैडोड तथा उसके नीचे की ओर झुके हुए पट या जमीन से सटे क्लैडोड की कटाई करें। पोधों से क्लैडोड को काटने के लिए स्वच्छ उपकरणों का प्रयोग करें। 5 से 6 महीने के अंतराल पर नियमित कटा करें। व्यवस्थित फसल में प्रतिवर्ष प्रति हैक्टेयर 40–50 मैट्रिक टन हरे चारे की पैदावार होती है।

नागफनी का रासायनिक संघटन व पोषण मान

नागफनी में शुष्क पदार्थ की मात्रा काफ़ी कम लगभग 6 से 8 % के आस पास होता हैं। जबकि राख तथा आग्जलेट की मात्रा सामान्य चारों की तुलना में काफ़ी अधिक होती हैं ।

तालिका : 1 नागफनी का रासायनिक संघटन (शुष्क पदार्थ आधारित)

शुष्क पदार्थ (%)	10-11
कच्चा प्रोटीन (%)	11.81
कच्चा वसा (%)	1.18
रेशा (%)	8.12
अम्ल में अघुलनशील राख (%)	2.55
कैल्शियम (%)	6.05
फॉस्फोरस (%)	0.30
मैगनीशियम (%)	3.15
पोटेशियम (%)	1.82
सोडियम (%)	0.05
कॉपर (मिग्रा/किग्रा)	6.13
जस्ता (मिग्रा/किग्रा)	24.37
मगनीज (मिग्रा/किग्रा)	98.17
लौह तत्व (मिग्रा/किग्रा)	257.54
कैरोटिनायड	29 माइक्रोग्रा /100 ग्राम
एसकॉर्बिक अम्ल	13 मिग्रा /100 ग्राम

उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता हैं कि नागफनी में शुष्क पदार्थ एवं प्रोटीन की मात्रा कम होती हैं तथा राख़ अग्जेलिक अम्ल अधिक मात्रा में पाये जाते हैं अतः किसानों को पशुओं को नागफनी खिलाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

- नागफनी के क्लैडोड को 2–3 सेमी. चौड़ी कुट्टी करके ही खिलाना चाहिए। कुट्टी करने से जहाँ एक ओर खाने में आसानी होती हें वही दूसरी ओर पशुओं में नागफनी की ग्राहयता भी बढ़ जाती हैं ।
- चूंकि नागफनी में पानी की मात्रा 90% से अधिक होती हें इसलिए इसका प्रयोग पशुओं को खिलाई में करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शुष्क भार आधार पर नागफनी की मात्रा 20 से 25% से अधिक नही होनी चाहिए। प्रत्येक व्यस्क पशु के चारे की कुल आवश्यकता का केवल एक चौथाई भाग ही नागफनी से देना चाहिए। इससे अधिक खिलाने पर पशु गीला गोबर करने लगता हैं।
- ताजे कटे नागफनी में शुष्क पदार्थ की मात्रा काफी कम, लगभग 7 % तक होती हैं अतः पशुओं को हरे चारे के रूप में नागफनी खिलाते समय उनके आहार में सुखा चारा जैसे–पुआल की कुट्टी, गेहूँ का भूसा इत्यादि अवश्य देना चाहिए। नागफनी को सूखे चारे के साथ खिलाने से गीला गोबर करना बंद कर देता हैं तथा उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता हैं ।
- वैसे तो नागफनी के राख़ में खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। परन्तु इसमें आग्जेलिक अम्ल की 6-12% मात्रा पायी जाती हैं जो कि सीधे तौर से पशुओं को कोई हानि नही पहुँचाते हैं। यदि अधिक मात्रा में नागफनी खिलाया जाता हैं तो उपरोक्त पदार्थ केल्शियम का अवशोषण प्रभावित करते हैं । जिससे पशु के शरीर में केल्शियम की कमी आ जाती हैं । अतः नागफनी खिलाते समय पशुओं को खनिज लवण की पूरक के रूप में 40 से 50 ग्राम मात्रा प्रति व्यस्क पशु के हिसाब से अवश्य देना चाहिए ।

नागफनी

खिलाना

कटाई के लिए तैयार

रोपाई

सामाजिक संचार - कृषि विकास का नवीनतम तंत्र

कैलाश, समर पाल सिंह एवं पी. के. गुप्ता
कृषि विज्ञान केन्द्र, दिल्ली–110073

वैश्विक कृषि पिछले कुछ दशकों से अनेक चुनौतियों जैसे जलवायु परिवर्तन, युवाओं का कृषि से पलायन, खाद्य पदार्थो एवं संसाधनों की कमी, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मांग व मूल्यों की अनियमितता, कृषि जोत का कम होना, विस्तार क्षेत्र की कमी, कोरोना महामारी एवं निम्न गुणवत्ता वाली जनशक्ति गतिविधियां, सुचना एवं प्रसारण के बुनियादी ढांचे की कमी आदि का सामना कर रही हैं। आधुनिक युग वर्तमान समय में कृषि प्रसार एवं सलाह प्रणाली जटिल समस्या के चलते कृषि नवाचार व विकास की सतत् प्रौद्योगिकियाँ किसानों के पास पहुंचने में विफल हो रही हैं। हमें जमीनी हकीकत पर ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं एवं किसानों के नेतृत्व करने का विश्वास एवं संगठानात्मक कौशल क्षमता विकसित करने की आवश्यकता हैं। एक अनुसंधान रिपोर्ट के अनुसार जमीनी स्तर पर अभी भी 2979 किसानों पर एक प्रसार कार्यकर्ता कार्य कर रहे है ।

हमारे देश में कृषि की सतत् विकास प्रौद्योगिकियों को प्रभावित करने के लिए भारत सरकार के विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्र (717), राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय कृषि विश्वविद्यालय (71), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र (15), अनुसंधान संस्थान (64) एवं विभिन्न निर्देशालय (13) आदि किसानों के आर्थिक विकास के लिए विभिन्न अनुसंधान, नवोन्मेषी एवं तकनीक विकसित कर रहे है लेकिन किसान समुदाय के बीच शिक्षा, संचार व प्रसार की कमी व कृषि प्रसार व सुचना प्रणाली के जटिल व नई चुनौतियों होने के कारण किसानों के बीच ज्ञान का संग्रह व आवश्यकताओं की पूर्ति व नये सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पा रहे हैं।

यदि हम सूचना व संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के माध्यम से नवीनतम प्रौद्योगिकीयों का हस्तांतरण, वैज्ञानिक उत्पादकता पर विचार एवं कृषि ज्ञान के अवसर प्रदान करके कृषक समुदाय व युवाओं के बीच ज्ञान, प्रसार व सूचना को बेहतर बना सकते है। हम इलैक्ट्रोनिक एवं प्रिंट मीडिया जैसे मोबाइल, रेडियों, टेलिविजन, कम्प्युटर, इंटरनेट एवं डिजिटल प्रौद्योगिकी के नवीनतम उपकरण (विडियो, ऑडियों व छायाचित्र) का प्रयोग कर सकते हैं। क्योंकि हमें विकासशील देशों की तरह कृषि विस्तार एवं सूचना प्रसारण सेवाओं को बढ़ावा देने के लिए नवीनतम डीजिटल मीडिया (संचार) युग मे निपुण होने की आवश्यकता हैं। वर्तमान समय में वैश्विक धरातल पर कोरोना महामारी ने इस नयी तकनिकी के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया, क्योकिं सोशल मीडिया ही इस कोरोना महामारी के समय ऐसे तकनीकी के रुप में ऊभर कर सामने आया कि हमारे वैज्ञानिकों एवं सरकारों का किसानों के बीच के सम्बन्ध को बनाये रखा। हमने इस महामारी के समय कृषि के महत्वपूर्ण कार्य की जानकारी रेडियों, टेलिविजन, कम्प्युटर, इंटरनेट, मोबाइल (व्हाट्स एप्प, फेसबुक, यूट्यूब, टिवट्र, इंस्टाग्राम केवीके–पोर्टल, मोबाइल एप्प) के माध्यम से हर समय कृषकों के पास पहुँचाते रहें है।

सोशल मीडिया (सामाजिक संचार) : संचार माध्यम इलेक्ट्रानिक संचार बेब आधारित हैं जो उपयोगकर्ता को व्यक्तिगत रूप से या समूहों में सूचनाओं व विचारों का आदान–प्रदान, एवं विचारों को साझा करने का निर्णय लेने एवं संग्रह करने, तकनीकी जानकारी बनाने में एवं संग्रहित करते हुए श्रोताओं के साथ सूचनाओं (संदेश, चित्र, विडियों आदि) करने की अनुमति प्रदान करता है। जिससे उपयोगकर्ता एवं श्रोतागण ज्ञान, जानकारी, विचार एवं व्यक्तिगत संदेश एवं अन्य तकनीकी सामग्री साझा कर सकते हैं। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (TARI) की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार मार्च, 2019 तक हमारे देश में 116 करोड़ मोबाइल व 63.67 करोड़ इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं

तालिका : 1 भारत में मोबाइल एवं इंटरनेट उपभोक्ता (2019)

सोशल मीडिया	शहरी क्षेत्र (करोड़)	शहरी क्षेत्र (करोड़)	कुल (करोड़)	प्रतिशत (%)	
				शहरी क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र
टेलीफोन (मोबाइल) उपयोगकर्ता	65.04	51.13	116.17	56.00	44.00
मोबाईल से इंटरनेट उपयोगकर्ता	40.90	22.70	63.67	64.24	35.76

इसी रिपोर्ट के अनुसार यदि हम शहरी क्षेत्र में प्रति 100 व्यक्ति पर 97 व ग्रामीण क्षेत्र में 25 मोबाइल उपयोगकर्ता है। इस वैश्विक धरातल के नजर से बात करे तो सबसे ज्यादा व्हाट्स एप्प, फेसबुक, यूट्यूब, टिवट्र एवं इंस्टाग्राम आदि का उपयोग हो रहा है।

संचार माध्यम का कृषि प्रसार में अवसर

1. बहुत कम समय, कम लागत में अत्यधिक प्रभावित क्षेत्र में सूचना का प्रसारण।
2. अधिक से अधिक किसानों /युवाओं तक सीधी पहुंच, जिससे तकनीकी में जागरूकता बढ़ेगी।
3. समस्या उन्मुख एवं आवश्यकता पर आधारित।
4. कृषि की नवीनतम व सतत् विकास प्रौद्योगिकियों का क्षैतिज स्तर पर तेजी से प्रसारण।
5. किसानों, महिला किसानों, स्वयं सहायता समूह एवं सभी हितधारकों को एक समूह पर लाना एवं तकनीकी, ज्ञान व कौशल में निपुण करना।
6. संस्था की प्रसार, उद्देश्य, कार्यक्षेत्र एवं सूचना गतिविधियाँ (मौसम, प्रजाति, फसल, पौध प्रबंधन एवं किसान मेला) आदि की श्रोतागणों तक सीधी पहुंच।
7. उपयोगकर्ता से नया सम्बन्ध व संस्था से नये श्रोतागणों से जुड़ाव।

कृषि विज्ञान केन्द्र का डिजिटल प्लेटफार्म

संचार माध्यम (डिजिटल तकनीकी) का कृषि प्रसार में योगदान

कृषि प्रसार एवं सुचना प्रसारण के विभिन्न उपकरण व माध्यम का विवरण एवं कृषि में योगदान निम्न प्रकार हैं।

1. व्हाट्स एप्प (Whats App) : कृषि प्रसार एवं सुचना प्रसारण व संग्रह, आदान प्रदान के लिए यह तरीका सबसे अच्छा है क्योंकि इसका उपयोग करने में सबसे सरल एवं आवश्यकतानुसार, विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, प्रगतिशील किसानों एवं कृषि हितधारकों के साथ विडियोकॉल, ऑडियो कॉल एवं फोटो से आदान–प्रदान करके अच्छा संचार बना सकते है। जिससे कम समय, कम लागत में अधिक सटीक जानकारी उपलब्ध हो जाती है। कृषि क्षेत्र में संस्था व किसान व्हाट्स एप्प का इस प्रकार उपयोग कर सकते हैं

- संस्था के अनुसंधान तकनीकी की जानकारी एवं प्रसार गतिविधियाँ (किसान गोष्ठी, प्रशिक्षण, संगोष्ठी, वैज्ञानिक सलाह) आदि की किसानों के पास सीधी जानकारी।
- विभिन्न कृषक समुदाय के व्हाट्स एप्प समूह (कृषक उत्पादक संगठन, सब्जी उत्पादन, फसल अवशेष प्रबंधन, प्रगतिशील किसान, पशु पालक आदि) के साथ सीधा संवाद एवं लघु व सीमांत को एक प्लेटफार्म उपलब्ध करवाना।
- साक्षरता के आधार पर कृषक समुदाय की पौधों के रोग, पशुओं की बीमारियों की जानकारी विडियो, ऑडियो एवं फोटो के माध्यम से सीधा समाधान।
- व्यक्तिगत रूप से कृषक के द्वारा विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों से खेती की जानकारी एवं विचार विमर्श।
- वर्तमान में विभिन्न कृषि प्रौद्योगिकियों का विडियों बनाकर किसानों की ज्ञान, कौशल एवं तकनीकियों में प्रायोगिक रूचि पैदा करना।

2. फेसबुक (Facebook): इस डिजिटल प्लेटफार्म के माध्यम से संस्थान के कृषि शिक्षा, संचार व प्रसार की विभिन्न जानकारी को अधिक क्षेत्र में कृषक समुदाय, युवाओं व महिला किसानों तक पहुंचा सकते है। हम उपकरण के माध्यम से संस्थान में होने वाले प्रशिक्षण, अनुसंधान, परामर्श, प्रबंधन, शिक्षा, विभिन्न नवाचार यानि आगामी वार्षिक योजना एवं संस्थान में सम्पन्न गतिविधियों जैसे प्रशिक्षण, कार्यशाला, मौसम सम्बन्धित या फसल उद्यमियों की प्रेरित कहानियों, कृषि उद्यम व व्यवसाय आदि को हम कृषक समुदाय व युवाओं तक उपलब्ध करवा सकते है। इस प्लेटफार्म के माध्यम से कृषि की नवीनतम व लाभदायक सतत् विकास की प्रौद्योगिकियों को साझा करके किसानों की आय में वृद्धि एवं वैज्ञानिक कृषकों के आय में जागरूकता ला सकते है एवं पत्र–पत्रिकाओं, प्रेरित कहानियों को विडियो, ऑडियों एवं फोटो आदि के माध्यम से युवाओं को प्रेरित करके खेती को नयी दिशा प्रदान कर सकते है।

3. यूट्यूब चैनल (You Tube Chennel): इस तकनीकी युग में यूट्यूब ज्ञान, सुचना एवं मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया हैं हमारे देश में कई सारे संस्थान, विद्यार्थियों को ऑनलाइन शिक्षा उपलब्ध करवा रही है जो बहुत ही उपयोगी है। वैश्विक धरातल पर कई विकासशील देश अपने कृषि संस्थान के माध्यम से यूट्यूब चैनल बनाकर नवीनतम ज्ञान व तकनीकी से सम्बन्धित कृषक समुदाय को जानकारी उपलब्ध करवा रही है। यदि हम भी इस तकनीकी को अपना कृषि का प्रमुख हिस्सा बना ले तो हमारी कृषि नयी दिशा तय कर लेगी। हम इस तकनीकी का उपयोग इस प्रकार कर सकते है जैसे –

- आधुनिक व वैज्ञानिक प्रौद्योगिकियों का 1–2 मिनट का वीडियो बनाकर हम कृषक समुदाय को जागरूक कर सकते है जैसे – गेहूँ की नवीन प्रजाति HD-3226 की उपयोगिता एवं वैज्ञानिक जानकारी एवं प्याज की नवीनतम प्रजाति एल–883।
- अपने कृषि संस्थान की डाक्युमेंट्री फिल्म बनाकर संस्थान के कार्य, उद्देश्य, आगामी वार्षिक योजना व कृषि की जानकारी साझा कर सके है। जैसे कृषि विज्ञान केन्द्र के द्वारा स्वरोजगार सृजन, कौशल विकास प्रशिक्षण आदि।
- सफल उद्यमियों, नवोन्मेषी किसानों की प्रेरित सफलताओं की कहानियों से कृषक समुदाय व युवाओं को खेती का मार्गदर्शन करना एवं आकर्षित करना।
- हम क्षेत्र की समस्या आधारित विडियों फिल्म बनाकर सीधा कृषकों, युवाओं को रोजगार के साधन उपलब्ध करवा सकते है जैसे– केचुंआ खाद उत्पादन तकनिकी, मृदा नमूना संग्रहण करने की विधि, फल एवं सब्जियों में परिरक्षण, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन।

4. टिवट्र एवं इंस्टाग्राम : इस प्लेटफार्म के माध्यम से युवाओं व शहरी क्षेत्र के शिक्षित युवाओं की कृषि क्षेत्र में रूचि पैदा करके खेती की तरफ आकर्षित करवा सकते है। हम इस प्लेटफार्म के माध्यम से शहरी क्षेत्र व ग्रामीण क्षेत्र में मॉर्डन खेती, कृषि शोध अनुसंधान व आधुनिक कृषि प्रणाली व प्रेरित कृषि उद्यमियों की कहानियाँ आदि से युवाओं व विशेषज्ञों को जानकारी उपलब्ध करवा सकते है। जैसे – छत पर बागवानी, नर्सरी तैयार करना, बैग में मशरूम उत्पादन आदि।

5. के वी के मोबाइल एप्लीकेशन (KVK/Institute App): . संचार माध्यम के युग में मोबाइल अनुप्रयोग बहुत ही उपयोगी साबित हो रही हैं। क्योंकि इस अनुप्रयोग के माध्यम से सारे सुविधाएँ एक ही उपकरण में

मिल जाती है। यदि कृषि विज्ञान केन्द्र की बात करें तो यह हर राज्य में जिला स्तर पर कम से कम एक ही संस्थान है जो कृषि प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण का कार्य करता है। हम कृषि विज्ञान केन्द्र की जिला स्तर पर विभिन्न अवयवों जैसे जिले की प्रमुख फसल, सब्जी उत्पादन, मौसम संबंधित जानकारी, बाजार में उत्पादों के मूल्य, संस्था के उत्पाद, प्रमुख फसलों के रोग, प्रशिक्षित, प्रशिक्षित प्रशिक्षुकों (नर्सरी, मशरूम) एवं प्रगतिशील व सफल उद्यमियों की कहानियाँ व विभिन्न प्रसार गतिविधियों के विडियों, ऑडियो आदि की जानकारी उपलब्ध करवा सकते हैं।

6. किसान कॉल सेन्टर : कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार ने 21 जनवरी, 2004 को किसानों की समस्या के समाधान, कृषि की नवीनतम सत्त व नवाचार प्रौधोगिकीयों के प्रचार प्रसार एवं हेल्पलाइन के माध्यम से सरकारी योजनाओं की जानकारी के लिए किसान कॉल सेन्टर की स्थापना की। इस प्लेटफार्म के माध्यम से किसान कृषि, पशुपालन, उद्यानिकी, योजनाओं, कृषि मौसम, कीट व बीमारियों के नियन्त्रण की सलाह एवं उधम स्थापना के सम्बधित हेल्प लाइन नम्बर 1551 व 1800–180–1551 पर कॉल करके जानकारी प्राप्त कर सकते है। वर्तमान में किसान कॉल सेन्टर 22 क्षेत्रीय भाषाओं में 21 अलग–अलग क्षेत्र में सुबह 06 से रात 10 बजे तक सप्ताह के 7 दिनों किसानों की सेवा के लिए उपलब्ध है।

7. मोबाइल अनुप्रयोग (Mobile Application): संचार माध्यम में मोबाइल अनुप्रयोग का महत्वपूर्ण योगदान है। हमारे कृषि क्षेत्र में कृषि, सहकारिता एवं कृषि कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के विभिन्न संस्थानों, सहकारिता समितियों एवं विपणन एजेन्सीयों ने विभिन्न क्षेत्र की अनुप्रयोग का विकास किया है।

तालिका : 2 विभिन्न संस्थाओं की कृषक उपयोगी मोबाईल एप्प

क्र. सं.	अनुप्रयोग का नाम	विवरण	उपयोगकर्ता	विकसित संस्थान
1.	कस्टम हायरिंग सेन्टर (फार्म मशीनरी)	किसानो को कस्टम हायरिंग सेंटर द्वारा कृषि यंत्रो का किराए पर उपलब्ध कराना	किसान महिला, किसान व युवा	कृषि, एवं कृषक कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
2.	मेघदूत	क्षेत्र के अनुसार मौसम व फसल के लिए सलाह, तापमान, नमी की जानकारी व कृषि कार्य की सावधानियाँ मौसम अनुसार	किसान व मौसम विशेषज्ञ	भारतीय मौसम विज्ञान एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली
3.	किसान सुविधा	यह किसानो को मौसम, बाजार उत्पाद मूल्य, कृषि आगत विकेता, पादप सुरक्षा, बीज, कृषि सलाह व मृदा स्वास्थ्य कार्ड की जानकारी	किसान व महिला किसान व कृषि आगतों विकेता व हितधारक	कृषि, एवं कृषक कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
4.	पुसा कृषि	यह एप विभिन्न फसलों की नवीनतम प्रजातियाँ, उत्पादन तकनीकी, फार्म मशीनीरिज आदि के बारे मे जानकारी	किसान व विशेषज्ञ	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्,,पूसा, नई दिल्ली
5.	IFFCO किसान App	यह किसानों IFFCO उत्पाद, पशु व कृषि सलाह, बाजार भाव, खाद व उर्वरक आदि की जानकारी उपलब्ध करवाती है।	किसान, महिला किसान व हितधारक	IFFCO

वर्तमान डिजिटल युग में संचार माध्यम हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन गया है। ग्रामीण क्षेत्र में युवा, कृषक समुदाय व महिला समुह कृषि ज्ञान के अवसर तो बहुत खोजते है। लेकिन सामग्री की अनुपलब्धता के कारण यह माध्यम मित्रों व परिवार से जुडने, समाचार पत्र पढ़ने व साथियों के साथ मनोरंजन का माध्यम बन कर रह गया है। यदि हम कृषि तकनीकी, ज्ञान, कौशल एवं कृषि प्रसार सेवाओं का समावेश कर दे तो हमारे देश की कृषि के लिए वरदान साबित हो जायेगा। सभी संस्थानों को डिजिटल तकनीकी को कृषक समुदाय से जुड़ने के लिए निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखना होगा।

- कम, सटीक एवं किसान उपयोगी जानकारी साझा करें।
- ऐसे समय जानकारी साझा करें जब श्रोता सबसे अधिक ऑनलाइन सक्रिय हो।
- कृषक समुदाय का इस माध्यम में बनाये रखने के लिए लगातार वाद–संवाद, विचार–विमर्श एवं समस्याओं का निदान समय–समय पर करते रहें।
- कोई भी कृषि सम्बन्धित जानकारी श्रोताओं को ध्यान में रखते हुए करें, यदि साक्षरता की बात आये तो किसानों को जानकारी विडियो, ऑडियों से भी उपलब्ध करवाने का प्रयास करें।
- हमें लघु व सीमांत किसानो से, साथी किसानों से व कृषक उत्पादक संगठन के सदस्यों मतलब श्रोताओं से निरंतर संवाद बनाये रखें।
- कोई भी जानकारी मौसम, फसल व जलवायु व श्रोताओं की आवश्यकतानुसार व मांग आधारित उपलब्ध करवायें।
- व्हाट्स एप्प, किसान समूह, जैसेः FPO, सब्जी उत्पादन एवं पशुपालक को राजनीतिक आर्थिक एवं धार्मिक संवाद का हिस्सा ना बनने दें।
- आप क्षेत्रीय भाषा में किसानों तक संदेश पहूँचाने का प्रयास करें।

संचार माध्यम का कृषि नवाचार व कृषि विस्तार मे सही अनुप्रयोग एवं कृषक समुदाय के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए समय, बजट, धैर्य, सही विषय वस्तु एवं विस्तार विशेषज्ञों से प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है। हमें सूचना की नियमित निगरानी, मुल्यांकन साझा करना, श्रोताओं की समस्या व आवश्यकता आधारित जानकारी, रिकार्ड एवं ग्राहकों की सूचना, विचार एवं विमर्श को वरियता देते हुए सावधानीपूर्वक कार्य करके कृषि को नयी गति देना हैं।

फसल उत्पादन में नैनो यूरिया का महत्व एवं उपयोग

प्रतिभा सिंह
राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा (जयपुर)

जैसा कि हम जानते हैं कि पौधे, सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में, वायुमंडल से कार्बन–डाई–ऑक्साइड तथा भूमि से पानी व खनिज पदार्थ ग्रहण करके जैविक पदार्थ का निर्माण करते हैं। पौधे अपने जीवन काल में वातावरण तथा मिट्टी से अनेक तत्वों को अवशोषित करते हैं, लेकिन वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर 17 तत्वों को पौधों के लिए आवश्यक माना गया है। सभी पोषक तत्वों में फसल उत्पादन के लिये नाइट्रोजन सबसे प्रमुख पोषक तत्व है, जो फसल की उचित बढवार और विकास के लिए आवश्यक है। एक स्वस्थ फसल को अपनी शारीरिक प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए लगभग 4% नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन फसल में अमीनो एसिड, एंजाइम, आनुवंशिक सामग्री (डीएनए–आरएनए, प्रकाश संश्लेषक वर्णक (क्लोरोफिल) और ऊर्जा हस्तांतरण यौगिकों (एटीपी–एडीपी) का एक आवश्यक पोषक तत्व और प्रमुख घटक है तथा पौधों में नाइट्रोजन प्रमुख रुप से निम्न दृष्टिगत कार्य करता है।

- पौधों की अधिक बढ़वार करता है एवं हरा बनाता है।
- पौधों में नयी शाखाओं को बनाता है।
- बढ़वार व फुटान में तेजी लाता है।
- उपज को बढ़ाता है तथा
- उपज में प्रोटीन की मात्रा को बढाता है।

फसलों को नाइट्रोजन की आपूर्ति के लिये प्रमुख रुप से यूरिया का उपयोग किया जाता है। यूरिया के इस्तेमाल ने अब तक देश में खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने में योगदान दिया है। लेकिन यूरिया के माध्यम से नाइट्रोजन का केवल 30-50% ही फसलों द्वारा उपयोग किया जाता है,जबकि शेष नाइट्रोजन गैसीय वाष्पीकरण, लीचिंग (रिसाव) अथवा मिट्टी स्थिरीकरण द्वारा फसलों को अनुपलब्ध हो जाती है तथा हमारी मिट्टी, हवा तथा जल को प्रदूषित करते हैं। फसलों को नाइट्रोजन की आपूर्ति के लिये प्रमुख रुप से यूरिया का उपयोग किया जाता है। यूरिया के इस्तेमाल ने अब तक देश में खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने में योगदान दिया है। लेकिन यूरिया के माध्यम से नाइट्रोजन का केवल 30-50% ही फसलों द्वारा उपयोग किया जाता है,जबकि शेष नाइट्रोजन गैसीय वाष्पीकरण, लीचिंग (रिसाव) अथवा मिट्टी स्थिरीकरण द्वारा फसलों को अनुपलब्ध हो जाती है तथा हमारी मिट्टी, हवा तथा जल को प्रदूषित करते हैं।

नाइट्रोजन की आवश्यकता को प्रभावी ढंग से पूरा करने हेतु तथा पर्यावरण को प्रभावित किए बिना अधिक उत्पादन करने के लिए इफको द्वारा विश्व में पहली बार नैनो तकनीकी पर आधारित, नैनो यूरिया का निर्माण किया गया है तथा यह भारत सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया है। नैनो यूरिया का निर्माण विधि स्वभावतः कार्बनिक है। नैनो तकनीकी से साधारण यूरिया के एक दाने को 55000 नैनो यूरिया के दाने में विभाजित कर दिया जाता है जिससे यूरिया का सतही क्षेत्रफल कई गुना बढ जाता है। परिणाम स्वरूप उसकी कार्य दक्षता में भी वृद्धि हो जाती है। फर्टिलाइजर कंट्रोल आर्डर (1985) के अनुसार नैनो यूरिया में वजन से 4-0% कुल नाइट्रोजन होता है जो तरल जल में समान रूप से फैलाया जाता है। नैनो यूरिया में कणों का आकार 100 नैनोमीटर से कम होता है, यानि समान्य यूरिया से लगभग 10 हजार गुना कम। नैनो यूरिया का उपयोग सीधे पत्तियों पर छिडकाव करके किया जाता है। नैनो यूरिया का फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर छिडकाव करने से नाइट्रोजन की सफलतापूर्वक आपूर्ति हो जाती है, जिससे उत्पादन में वृद्धि के साथ साथ पर्यावरण भी शुद्ध होता है।

नैनो यूरिया का उपयोग से लाभ

1. सभी फसलों के लिए उपयोगी।
2. सुरक्षित एवं पर्यावरण के अनुकूल, टिकाऊ खेती हेतु उपयोगी।
3. बिना उपज प्रवाभित किये यूरिया या अन्य नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों की बचत।
4. वातावरण प्रदूषण की समस्या से मुक्ति (अर्थात मिट्टी, हवा और पानी की गुणवत्ता में सुधार)।
5. उर्वरकों की दक्षता में सार्थक सुधार।
6. अधिक गुणवत्तायुक्त उपज पाने में सहायक।
7. पारंपरिक यूरिया से 10 प्रतिशत सस्ता।
8. उर्वरकों की ढुलाई खर्च में बचत।
9. किसानों को अधिक आर्थिक लाभ।

नैनो यूरिया का उपयोग विधि?

- नैनो यूरिया का 2–4 मिलीलीटर प्रति लीटर के घोल का खडी फसल में छिडकाव करना चाहिये।
- नाइट्रोजन की कम आवश्यकता वाली फसलों में 2 मिली. एवं नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता वाली फसलों में 4 मिली. तक नैनो यूरिया प्रति लीटर पानी की दर से उपयोग किया जा सकता है।
- अनाज, तेल, सब्जी, कपास इत्यादि फसलों में दो बार तथा दलहनी फसलों में एक बार नैनो यूरिया का उपयोग किया जा सकता है।

- पहला छिडकाव अंकुरण, रोपाई के 30–35 दिन बाद तथा दूसरा छिडकाव फूल आने के एक सप्ताह पूर्व किया जा सकता है।
- एक एकड खेत के लिये प्रति छिडकाव लगभग 100– 125 लीटर पानी की मात्रा पर्याप्त होती है।

नैनो यूरिया पौधों में कैसे कार्य करता है?

- इसमें उपस्थित नाइट्रोजन पौधों के उपयोग हेतु सुलभ रुप में पाया जाता है, जिससे यह पौधों की उपापचय क्रियायों में सक्रिय भूमिका निभाता है।
- नैनो यूरिया में मौजूद नाइट्रोजन उपलब्ध रूप में है और फसल की पोषण आवश्यकता को प्रभावी रूप से पूरा करता है।
- पर्णीय छिडकाव के बाद नैनो यूरिया के कण स्टोमेटा या अन्य रिक्त स्थानों के माध्यम से आसानी से पर्णियों में प्रवेश कर जाते हैं और कोशिकाओं द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं।
- ये कण फ्लोएम के द्वारा बड़ी आसानी से पौधे की आवश्यकता अनुसार अन्य भाग में वितरित हो जाते हैं।
- पौधे के उपयोग के बाद बची हुई नाइट्रोजन रिक्तिकाओं (Vacuole) में जमा हो जाती है और आवश्यकतानुसार धीरे धीरे मुक्त होकर पौधे की वृद्धि में योगदान देती है।

नैनो यूरिया का फसल उत्पादन पर प्रभाव

राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा (एस.के.एन. कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर) में वर्ष 2019–20 तथा 2020–21 में गेंहू, बाजरा तथा सरसों की फसल पर लगाये गये प्रदर्शनों में नैनो यूरिया के प्रयोग से 25 से 50 % सामान्य यूरिया की बचत के साथ 8 से 15 प्रतिशत अधिक उपज पाया गया।

उपयोग दिशा–निर्देश तथा सावधानियाँ

- उपयोग से पहले अच्छी तरह से बोतल को हिलाएं।
- फ्लेट फैन नोजल का उपयोग करें।
- सुबह के समय छिडकाव करें जब तेज धूप, तेज हवा तथा ओस न हो।
- यदि नैनो यूरिया के छिड़काव के 12 घंटे के भीतर बारिश होती है, तो यह सलाह दी जाती है कि छिडकाव को दोहराया जाना चाहिए।
- यदि आवश्यक हो, नैनो यूरिया को आसानी से जैव–उत्प्रेरक (सागरिका), 100% पानी में घुलनशील उर्वरकों और कृषि रसायनों के साथ मिलाकर उपयोग किया जा सकता है, लेकिन हमेशा मिश्रण और छिड़काव से पहले जार परीक्षण अवश्य करें।
- बेहतर परिणाम के लिए नैनो यूरिया का उपयोग इसके निर्माण की तारीख से 2 साल के अंदर किया जाना चाहिए।
- यद्यपि नैनो यूरिया विष–मुक्त है, सुरक्षा की दृष्टि से फसल पर छिड़काव करते समय फेस मास्क और दस्ताने का उपयोग करने की सलाह दी जाती है।
- नैनो यूरिया बच्चों और पालतू जानवरों की पहुंच से दूर ठंडी, सूखी जगह में रखें।

सोयाबीन बुवाई के पहले बीज संबन्धित महत्वपूर्ण जानकारी

भरत लाल मीना, चतुर्भुज मीना, धर्म सिंह मीना एवं बी के पाटीदार
कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज फार्म, कोटा

राजस्थान का सोयाबीन उत्पादन में मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के बाद तीसरा स्थान है। सन् 2018–19 में सोयाबीन का क्षेत्र 9.30 लाख हैक्टेयर, उत्पादन 11.60 लाख टन एवं उत्पादकता 1244 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर थी। राजस्थान में सोयाबीन की खेती मुख्यतः दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्र में होती है। कोटा, झालावाड़, बारां एवं बूंदी जिलों के अतिरिक्त चित्तौड़गढ़ एवं प्रतापगढ़ जिले में इसकी खेती व्यापक रूप से की जाती है। उदयपुर एवं बांसवाड़ा जिलों में भी कुछ क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है। अच्छी गुणवत्ता वाले बीज वो बीज होते है जिसका अंकुरण कम से कम 70 प्रतिशत से ज्यादा हो एवं अंकुरित बीज स्वस्थ पोंधों के रूप में विकसित हो सके। सोयाबीन का बीज अन्य फसलों की तुलना मे बहुत ही ज्यादा नाजुक होता है जिसका बीज उत्पादन कार्यक्रम में उचित देखभाल की अति आवश्यकता होती है अन्यथा कम अंकुरण की समस्या से जूझना पड़ता है इसी कारण प्रति वर्ष सोयाबीन मे उन्नत बींजों की माँग अधिक रहती है इसलिए बीज के अच्छे अंकुरण होने के लिए एवं उपयुक्त पौधों की संख्या पाने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

भौतिक शुद्धता : बीज मे संबन्धित किस्म के बींजों के अतिरिक्त अन्य फसलों व खरपतवार के बीज, धुल, कंकड़, मिट्टी व भूसी आदि भी सम्मिलत रहते है जिनकी मात्रा 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

आनुवांशिक शुद्धता : आनुवांशिक शुद्धता के कारण ही उस बीज की उत्पन्न समस्त पौधो में एकरूपता, गुणों की समानता, पकने की अवधि आदि समान रूप से पाई जाती है।

अंकुरण क्षमता: एक बीज की अंकुरण, बीज की उस क्षमता के रूप मे परिभाषित किया जाता है जहाँ एक बीज एक अंकुर बनता है जो एक स्वस्थ पौधा बनने के लिए सक्षम है वह नमी एवं ऑक्सीजन के अनुकूल हालात मे, बीज अंकुर का उत्पादन होता है जिसके सभी भागो का समान रूप से विकास होता है और जो एक स्वस्थ पौधा बन सकता है

किसानों के स्तर पर अंकुरण परिक्षण: बीज का अंकुरण परिक्षण बुवाई से पूर्व अवश्य करें। यह 70 प्रतिशत या उससे अधिक होना चाहिए। अंकुरण परिक्षण हेतु एक बड़े ट्रे में बालू भरकर उसमें 50 प्रतिशत तक पानी डाल कर भीगो दे। भीगी बालू में 400 सोयाबीन के बीज 2 से.मी. गहराई में बुवाई करे। दो बीज के बीच की दूरी 2 से.मी. एवं दो कतार के बीच की दूरी लगभग 5 से.मी. होनी चाहिए, ध्यान रहे बालू सूखे न अतः जरूरत के हिसाब से बालू मे पानी की फुहार दे देवे। 5–7 दिन मे अंकुरित स्वस्थ पोंधों को गिने। यदि 280 या उससे ज्यादा स्वस्थ पौधे अंकुरित हो गए तो बीज उत्तम है अंकुरित पौधो की सही जाँच के लिए उसे बालू से बाहर निकाले। जड़ एवं पौधो की वृद्धि को ध्यान से देखे पौधो की वृद्धि सीधी होनी चाहिए। जड़ एवं तने की वृद्धि सही व उचित अनुपात मे होनी चाहिए बालू की जगह मिट्टी का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

बीज दर: सोयाबीन उत्पादन हेतु उचित बीज दर इस्तेमाल करना बहुत महत्वपूर्ण है पौध संख्या न तो बहुत घना न ही कम होना चाहिए। उत्तम उत्पादन के लिए सामान्यतः 4 लाख पौधे प्रति हेक्टयर उपयुक्त होता है बीज दर ज्ञात करने हेतु सोयाबीन बीज के 100 बीज का वजन (भार) जानना जरूरी है 100 बीज के वजन ज्ञात कर निम्नलिखित सूत्र से आप किसी भी किस्म की बीज दर ज्ञात कर सकते है।

$$\text{बीज दर (कि.ग्रा.)} = \frac{\text{कुल पौध संख्या x100 बीज का वजन (ग्राम)}}{\text{बीज अंकुरण (70 प्रतिशत) x 1000}}$$

$$\text{उदाहरण स्वरूप बीज दर (कि.ग्रा.)} = \frac{400000 \times 10}{70 \text{ प्रतिशत} \times 1000} = 57.14 \text{ किलो ग्राम}$$

अनुमानित 60 किलो ग्राम प्रति हेक्टर

तालिका : 1 सोयाबीन की महत्वपूर्ण किस्मों की बीज दर

किस्म	100 बीज का वजन (ग्राम)	बीज दर किलोग्राम प्रति हेक्टर
जे एस 20–29	11-12	65-70
जे एस 93–05	11-12	65-70
जे एस 20–34	12-13	70-75
जे एस 95–60	12-13	70-75
आरकेएस 18	10-11	60-65
आरकेएस 113	10-11	60-65
जे एस 97–52	9-10	55-60

बीज का अंकुरण यदि 50 प्रतिशत से कम हो तो ऐसे बीज को नहीं लगाने की सलाह दी जाती है यदि अंकुरण क्षमता 50 से 70 प्रतिशत के बीच है तो इस बीज की मात्रा बढ़ा कर बुवाई की जा सकती है 70 प्रतिशत अंकुरण क्षमता से कम वाली बीज ऐसी परिस्थिति मे ही लगाये जब बीज की कमी हो या अच्छे बीज उपलब्ध न हो।

तालिका : 2 अंकुरण प्रतिशत के अनुसार बुवाई हेतु बीज की मात्रा का निर्धारण

अंकुरण प्रतिशत	बीज दर किलो प्रति हेक्टर
70	70
65	75
60	85
55	95
50	110

बीज स्वास्थ्य : रोगमुक्त बीज से ही स्वस्थ पोंधे का जन्म संभव है। अधिक वर्षा एवं तापमान के कारण सोयाबीन की फसल मे विभिन्न रोग जेसे चारकोल रोंट, राइजोक्टोनिया एरियल ब्लाइट, पीला मोजाक वायरस, सोयाबीन मोजेक वायरस, एंथ्राक्नोज, पॉड ब्लाइट, बेक्टेरियल पश्चुल से प्रभावित होती है तथा इसकी अंकुरण क्षमता का ह्रास होता है जिसका असर आने वाली फसल पर होने की आशंका होती है यदि बीज रोगजनक जींवों व कीड़ों से संक्रमित है तो उससे खेत मे पौधो की संख्या मे कमी के साथ साथ उपज मे भी कमी होगी और रोगग्रस्त पौधो के नियंत्रण हेतु रोगनाशक दवाईयों पर खर्च ज्यादा होता है।

बीज उपचार: बीज मे बीमारियो को फैलने से रोकने तथा बीज का अंकुरण स्तर बनाए रखने के लिए बुवाई से पहले उपचार आवश्यक है।

तालिका : 3 बीज उपचार हेतु विभिन्न दवाईयाँ एवं उनकी मात्रा

दवाईयों के नाम	दवाईयों की मात्रा
कार्बेण्डाजिम (बाविस्टीन)	3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज
थायरम कार्बेण्डाजिम	2+1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज
कार्बोक्सीन (विटावेक्स)	3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज

सबसे पहले बीज का वजन तोल कर ड्रम मे डाले फिर अनुसंशित मात्रानुसार दवा को बीज के उपर डाले तथा ड्रम को लगातार घुमाए/ हिलाये जब तक दवा बीज से पूरी तरह चिपक नहीं जावे इसके बाद ब्रेडी राइजोबियम 5 ग्राम प्रति किलो बीज व पी. एस. वी. कल्चर 5 ग्राम प्रति दर से बीज उपचारित कर छाया मे सुखाकर बोने के लिए उपयोग करें। कल्चर एवं फफूंदनाशक एक साथ मिला कर उपयोग मे नहीं लाना चाहिए। बीज उपचार का पाउडर बीज लगाते समय बहुत ही कम मात्रा मे पानी के फुहार देकर बीज उपचार कर सकते है ध्यान रखे पानी के प्रयोग से बीज उपचार करने के बाद बीज को छाया मे सूखा ले या तुरंत बुवाई करे। ज्यादातर देखा गया है कि किसान सीड ड्रिल से बीज बुवाई के समय बीज के ढेर के ऊपर अंदाज से बीज उपचार पाउडर डाल कर बुवाई करते है। इस तरह कि बुवाई से बीज उपचार का सही फल नहीं मिल पाता है।

आधुनिक तकनीक द्वारा बीजोपचार: सोयाबीन जैसे चिकने बीज मे उन्नत तकनीक जैसे सिंथेटिक पॉलीमर के माध्यमों से बीजोपचार करने से बीज के ऊपर दवा का पतला आवरण बन जाता है बीजों को सिंथेटिक पॉलीमर से बीज उपचार करने के बाद बीज को छाया मे सूखा ले। बीज को उपचार के बाद सूखा लेने से किसान अपने हिसाब से कभी भी बुवाई कर सकते है इस तरह बीज उपचार करने से बीजों के ऊपर दवा स्थायी रूप से चिपका रहता है बुवाई के समय दवा बीज से झड़ नहीं पाती और अंकुरण के समय पानी के साथ दवा बीज के अंदर प्रवेश कर जाती है एवं सही तरीके से बीज को सुरक्षा प्रदान करता है। साधारणत: एक किलो बीज उपचार के लिए 2 ग्राम सिंथेटिक पॉलीमर के साथ अनुसंशित दवा कि मात्रा और 5 मिलीलीटर पानी प्रयाप्त होता है।

बीजोपचार के लाभ

- बीजोपचार बीज मे निहित बीमारियों को रोकने मे प्रभावी होता है।
- बीजोपचार मे बहुत ही कम मात्रा मे दवा का इस्तेमाल किया जाता है, पूरी फसल मे दवा के छिड़काव की तुलना मे कम खर्च का लाभ मिलता है।
- अक्सर नए पोंधे बीमारियो एवं कीटों के प्रकोप के लिए ज्यादा नाजुक होते है, बीज उपचार के माध्यम से हम यह आश्वस्त हो सकते है कि, जब पोंधे को दवा की सबसे ज्यादा जरूरत है तो यह दवा पोंधे मे मोजूद है।
- राइजोबियम कल्चर से उपचरित बीज के पोंधों मे अधिक नाइट्रोजन स्थिरकरण होता है और फसल की उत्पादन एवं उत्पादकता भी बढ़ती है।
- बीजोपचार खेत मे स्वस्थ एवं अधिक पोंध संख्या निर्धारित करती है, फलस्वरूप अधिक उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने मे महत्तवपूर्ण योगदान देती है अत: बीजोंपचार अतिआवश्यक है।

मछली व सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली

महेन्द्र कुमार यादव, नरेश राज कीर एवं नीतेश कुमार यादव
मात्स्यिकी महाविधालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंत नगर, केंद्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, मुंबई एवं मात्स्यिकी महाविद्यालय, केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, इम्फाल

मछली व सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली में मछली के भोजन लिए जैविक खाद के रूप में सुअर के गोबर का उपयोग किया जाता हैं। मछली व सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली में 30 से 40 सुअर प्रति हेक्टेयर रखा जाता है। सूअरों को बड़े पैमाने पर रसोई के कचरे, जलीय पौधों और फसल उत्पादों को खिलाया जाता है। वर्तमान में सभी विकासशील देशों में मछली सुअर के एकीकृत का अभ्यास किया जा रहा है। सूअर का मांस उत्पादन के लिए देश में कई विदेशी नस्लों के सूअर लाए गए हैं। जिनकी लोकप्रिय किस्म निम्न हैं।

- व्हाइट यॉर्कशायर
- बर्कशायर
- लैंड्रेस

मछली का स्टॉक : मछली की उच्च पैदावार के लिए स्टॉकिंग की दर 4000 से 14000 अंगुलिकाये /हेक्टेयर और 80 सतह फीडर 20 कॉलम फीडर 30 बॉटम फीडर और 10 से 20 सर्वाहारी की प्रजाति की मछली काम में लेते है। भारत के उत्तरी और उत्तर – पश्चिमी राज्यों में तालाबों को मार्च के महीने में स्टॉक किया जाना चाहिए और अक्टूबर से नवंबर के महीने में मछली को एकत्रित किया जाना चाहिए। अधिक सर्दी के कारण मछलियों की वृद्धि प्रभावित होती है।

सुअर घर का निर्माण : सूअरों के पालन के लिए पर्याप्त आवास और सभी आवश्यकताओं के साथ सूअर का घर आवश्यक है। सुअर घर का निर्माण दो प्रणालियों के तहत किया जाता है ओपन एयर और इंडोर सिस्टम। मछली सह सुअर पालन प्रणाली में दोनों के संयोजन का पालन किया जाता है। तालाब के सामने सुअर की एक एकल पंक्ति का निर्माण तालाब के तटबंध पर किया जाता है। सुअर घर एक संलग्न तालाब से जुडा हुआ है ताकि सूअरों को पर्याप्त हवा और सूरज की रोशनी मिल सके और गोबर के लिए उपयुक्त स्थान मिल सकें। सुअर घर को सूखा और साफ रखने के लिए खाने और पीने के कुंड भी बनाए जाते हैं। गेट केवल खुले जगह प्रदान करते हैं। सुअर के घुमने की जगह के फर्श को सीमेंट से बनाया जाता है और जल निकासी को नाली के माध्यम से तालाब से जोड़ा जाता है। तालाब में कचरे के प्रवाह को रोकने के लिए जल निकासी नाली में एक शटर प्रदान किया जाता है। जल निकासी नाली को एक डायवर्शन चैनल के साथ एक गड्ढे में प्रदान किया जाता है। संग्रहित कचरे को आवश्यकता के अनुसार निकाला जाता है। सूअर के घर की ऊंचाई 1-4 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। घर का फर्श सीमेंट का होना चाहिए। सुअर घर का निर्माण स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों से किया जा सकता है। प्रत्येक सुअर के लिए 1-4 मीटर का स्थान प्रदान करना उचित है।

सूअरों का चयन : हमारे देश में चार प्रकार के सुअर उपलब्ध हैं – जंगली सुअर, पालतू सूअर या देसी सुअर, विदेशी सूअर और विदेशी सूअरों का उन्नत स्टॉक। भारतीय किस्में धीमी विकास दर के साथ छोटे आकार की हैं। सूअर के दो विदेशी उन्नत स्टॉक जैसे कि बड़े – व्हाइट यॉर्कशायर, बर्कशायर, हैम्पशायर और हैंड रेस मछली के साथ साथ पालने के लिए सबसे उपयुक्त हैं। ये अपने त्वरित विकास और विपुल प्रजनन के लिए जाने जाते हैं। वे छह महीने के भीतर 10 से 20 किलोग्राम के हो जाते हैं। इस प्रकार छह महीने की विदेशी और उन्नत सूअरों की दो फसलें मछली की एक फसल के साथ उठाई जाती हैं 30 से 40 सूअर प्रति हेक्टेयर जल क्षेत्र में रखें जाते हैं। सूअर के घर का आकार सूअरों की संख्या पर निर्भर करता है। मछली सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली 1000 किलोग्राम वजन वाले प्रत्येक सुअर के लिए फर्श की जगह /3-6 मीटर 2 प्रदान की जाती है। यह तालाब की जैविक उत्पादकता को बढ़ाता है। गोबर का एक हिस्सा सीधे कुछ मछलियों द्वारा भी खाया जाता है। 35-40 सूअरों द्वारा उत्सर्जित मलमूत्र एक हेक्टेयर पानी को निषेचित करने के लिए पर्याप्त पाया जाता है।

मछली सह सुअर पालन के लाभ

- मछली सूअरों और उनके मल द्वारा उत्सर्जित भोजन का उपयोग करती है जो पोषक तत्वों से भरपूर होता है।
- सुअर का गोबर तालाब के उर्वरक और मछली के भोजन के विकल्प के रूप में काम करता है। इसलिए, मछली उत्पादन की लागत बहुत कम होती है।
- सुअर पालन के लिए अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता नहीं है।
- सूअर और घास के लिए आवश्यक मवेशी चारा तालाब के तटबंधों पर उगाए जाते हैं।
- तालाब सूअरों को धोने के लिए पानी प्रदान करता है – दाग और सूअर।
- यह प्रति यूनिट क्षेत्र में पशु प्रोटीन के उच्च उत्पादन का परिणाम है।
- यह कम निवेश के माध्यम से उच्च लाभ सुनिश्चित करता है।
- सुअर के गोबर के निरंतर आवेदन के कारण तालाब के तल पर जमा होने वाली तालाब को सब्जियों और अन्य फसलों और मवेशियों के चारे के लिए उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

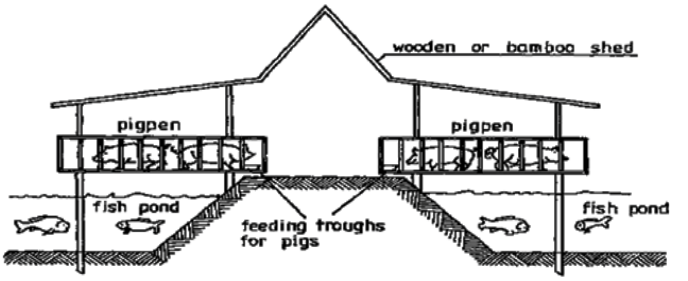

मछली–सुअर की एकीकृत कृषि प्रणाली

खरीफ में गाजरघास के प्रसार का करें समुचित नियंत्रण

पप्पू खटीक, सुभाष असवाल, सुनिल कुमार, डी. के. सिंह, टी. सी. वर्मा एवं के. सी. मीना
कृषि विज्ञान केन्द, अन्ता (बारां)

गाजरघास का वैज्ञानिक नाम *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* है जो कि कम्पोजिटी कुल का पौधा है इसका उत्पति स्थल मेक्सिकों, मध्य व उत्तरी अमेरिका माना जाता है। हमारे देश में इसका प्रवेश 1955 में अमेरिका से आयातित गेहूँ के साथ हुआ था। यह एक वर्षीय शाकीय पौधा हैं जो लगभग 3–4 माह में अपना जीवन चक्र पूरा कर लेता है तथा पूरे वर्ष फलता–फूलता रहता हैं। परन्तु खरीफ में उचित नमी एवं अनुकुल वातावरण के कारण बहुत अधिक बढ़वार लेता है, जो अत्यधिक मात्रा में बीज उत्पादन करता हैं। इसके पौधे की लम्बाई 1.0 से 1.5 मीटर तक होती है। तना रोयेदार एवं शाखीय होता हैं पत्तियां गाजर अथवा गुलदावदी के पौधे की भांति होती है। पौधो पर सफेद रंग के छोटे–छोटे फूल लगते हैं। यह पौधा हर प्रकार की जलवायु में उगने की अभूतपूर्व क्षमता रखता हैं। भूमि की अम्लीयता या क्षारीयता का इसके अंकुरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं। प्रत्येक पौधे से 5000–25000 अत्यन्त सूक्ष्म बीज उत्पन्न होते हैं जो अपनी स्पंजी गद्दीयों की सहायता से हवा व पानी के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुंच जाते हैं। पार्थेनियम के पौधे बहुतायत में आवासीय भवनों के आस–पास, औधोगिक क्षेत्रो की अनुपयोगी भूमि, सड़क के किनारे, रेल्वे लाइनो पर पाये जाते हैं। यह पौधा खाद्यान्न फसलों, सब्जियों एवं उद्यानो में भी पाया जाता हैं।

गाजरघास का मनुष्यों के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव : गाजरघास का मनुष्यों व पशुओं के स्वास्थ्य पर बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ता हैं। इस खरपतवार के लगातार सम्पर्क में आने से मनुष्यों में डरमेटाइटिस, एलर्जी, एक्जिमा, दमा, बुखार आदि बीमारियां हो जाती हैं। इस खरपतवार में पार्थेनिन नामक विशैला पदार्थ होता हैं। पशुओं द्वारा इसे खाने से पशुओं के दूध में कड़वाहट एवं दुर्गन्ध आने लगती हैं।

गाजरघास का कृषि उत्पादन पर हानिकारक प्रभाव : कृषि उत्पादन में होने वाले नुकसान का 33 प्रतिशत केवल खरपतवारों द्वारा होता हैं जबकि केवल गाजरघास खरपतवार खाद्यान्नों फसलों की पैदावार में 40 प्रतिशत तक कमी करने की क्षमता रखता हैं। गाजरघास के पौधे में सेस्क्यूटरपिन लेक्टोन नामक विशाक्त पदार्थ पाया जाात है जो फसलों के अंकुरण एवं वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। दलहनी फसलों की जड़ ग्रन्थियो का विकास कम करता हैं। इस पौधे के शीर्ष भाग कट जाने या नष्ट हो जाने पर काफी पुर्नवृद्धि की क्षमता रखता हैं। पौधो की जड़ो की गहराई अधिक होने के कारण सूखा करने की क्षमता अधिक होती हैं।

गाजरघास नियंत्रण के उपाय : गाजरघास नियंत्रण के लिए यह बहुत आवश्यक हैं कि इससे होने वाले कुप्रभावों की व्यापक जानकारी किसानों को उपलब्ध कराई जाये। इसके नियंत्रण के लिए सामाजिक चेतना पैदा की जाये। सामुहिक रूप से मिलकर पार्थेनियम उन्मूलन का अभियान चलाया जाना चाहिये।

गाजरघास की रोकथाम निम्नलिखित उपायों द्वारा की जा सकती हैं

(1) इस खरपतवार को जड़ सहित हाथों से (दस्ताने या प्लास्टिक की थैली पहनकर) फूल आने से पहले उखाड़कर जला देना चाहिये।
(2) आकर्षित क्षेत्र में शकनाशी रसायन जैसे–ग्लायफोसेट 1–1.5 प्रतिशत या मेट्रीव्यूजीन 0.3–0.5 प्रतिशत घोल का फूल आने से पूर्व छिड़काव करने से गाजरघास नष्ट हो जाती है।
(3) अक्टूबर–नवम्बर में अकर्षित क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धात्मक पौधे जैसे–कैसिया तोरा के बीज एकत्रित कर उन्हे फरवरी–मार्च में छिड़क देना चाहिए। यह वनस्पति गाजरघास की वृद्धि एवं विकास को रोकती है।
(4) कृषि क्षेत्रो में बुवाई से पूर्व फसल के अनुसार एट्राजिन, एलाक्लोर, मैट्रिब्यूजीन, 2,4–डी के उपयोग से सम्बन्धित फसल में इसका नियंत्रण किया जा सकता हैं।
(5) इस खरपतवार के जैविक नियंत्रण हेतु मैक्सीकन बीटल (जाइगोग्रामा बाईकोलरेटा) कीट को वर्षा ऋतु में इस पर छोड़ने से पार्थेनियम की बढ़वार में कमी पाई गई।

गाजरघास का पौधा

गाजरघास से मनुष्य में डरमेटाइटिस

गाजरघास पर जाइगोग्रामा बीटल

सावधानियाँ : इस खरपतवार को उखाड़ते व काटते समय शरीर को सीधे सम्पर्क में आने से बचाना चाहिये, क्योंकि सीधे सम्पर्क में आने से अनेक चर्म रोग होने का खतरा रहता हैं। अतः इसे उखाड़ते या काटते समय हाथों में दस्तानों व सुरक्षात्मक कपड़ो का उपयोग करना चाहियें।